कृष्ण-विशेषांक
वर्ष : ७ अंक ८

निगमामृत

(लक्ष्मी-सूक्त)

१३.

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥

ए हो अग्निदेव, आप ज्ञाता तीन कालके हैं
प्रार्थना विनम्र, पद्मनाभ संगवाली जो,
गज-शुण्डदण्डमें अवस्थित कलश-जल—
द्वारा हैं नहाती, आर्द्र अंगवाली जो।
पुष्टि-दायिनी हैं, पद्ममालासे अलंकृत हैं,
स्वर्णमयी और रक्त-पीत रंगवाली जो,
लक्ष्मीको बुलाओ उन्हीं वास मम वास-हेतु
चारु चन्द्रिका-सी दिव्य रंग-ढंगवाली जो॥

१४.

आर्द्रां यष्करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥

सज्जनोंकी रक्षामें निरत जो दयार्द्र सदा,
दुष्ट दृप्त दानवोंको दण्ड दिया करतीं,
यष्टिके समान सृष्टिकी जो अवलम्बनीय,
धारण सुवर्णा हेममाला किया करतीं।
रविके समान छबिशालिनी हिरण्यमयी
विश्वको प्रसू-सी पाल-पोस लिया करतीं,
माता लक्ष्मीको जातवेदा हे बुलाओ उन्हीं
सेवकोंको जो हैं सदा तोष दिया करतीं॥

श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

प्रवर्तक

ब्रह्मलीन श्री जुगलकिशोर बिरला

सम्मानित

● सम्पादक-मण्डल

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

डा० विद्यानिवास मिश्र

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

डॉ० भगवान् सहाय पचौरी

संख्या ●

वर्ष : ७, अङ्क : ८

मार्च, १९७२

श्रीकृष्ण-संवत् : ५१९७

● सम्पादक

पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

गोविन्द नरहरि वैजापुरकर

शुल्क ●

वार्षिक : ७ रु०

आजीवन : १५१ रु०

प्रबन्ध-सम्पादक

देवधर शर्मा

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

'श्रीकृष्ण-सन्देश'के उद्‌देश्य तथा नियम

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखों द्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिक्य, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोध जाग्रत् करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

नियम : उद्देश्यमें कथित विषयोंसे संबद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक लेख ही इस पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। लेखोंमें काट-छांट, परिवर्तन-परिवर्धन आदि करने अथवा उन्हें न छापनेका संपूर्ण अधिकार सम्पादकका है। अस्वीकृत लेख बिना माँगे नहीं लौटाये जाते। वापसीके लिए टिकट भेजना अनिवार्य है। लेखमें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

लेखक उद्देश्यमें निर्दिष्ट विषयपर ही उत्तम विचारपूर्ण लेख भेजें। लेख स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें कागजके एक ही पृष्ठपर बायें हाशिया छोड़कर लिखा होना चाहिए। लेखका कलेवर अधिक बड़ा न रहे। सामग्री सुन्दर, सामयिक तथा प्रेरणाप्रद हो। लेख 'सम्पादक' 'श्रीकृष्ण-सन्देश' रू० नं० ६, कैलगढ़ कालोनी, जगतगंज, वाराणसीके पतेपर भेजें।

• 'श्रीकृष्ण-सन्देश' अगस्त माससे प्रारम्भ होकर प्रत्येक मासकी पहली तारीखको प्रकाशित होता है, इसका वार्षिक मूल्य ७) है। जो लोग एक सौ इक्यावन रुपये एक साथ एकबार जमा कर देते हैं, वे इसके आजीवन ग्राहक माने जाते हैं। उन्हें उसी चंदेमें उनके जीवनभर 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मिलता रहेगा।

ग्राहकको अपना नाम पता सुस्पष्ट लिखना चाहिए। ७) चंदा मनिआर्डर द्वारा अग्रिम भेजकर ग्राहक बनना चाहिए। वी० पी० द्वारा अंक जानेमें अनावश्यक विलम्ब तथा व्यय होता है।

• **विज्ञापन :** इसमें उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक द्रव्योंके विज्ञापन नहीं छपते। विज्ञापन पूरे पृष्ठपर छपनेके लिए ५००) रुपये तथा आधे पृष्ठपर छपनेके लिए ३००) रुपये भेजना अनिवार्य है।

पत्र-व्यवहारका पता :
व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा

मासिक व्रत, पर्व एवं महोत्सव

[संवत् २०२९ चैत्र शुक्ल प्रतिपद् गुरुवार १६ मार्च '७२ से शुद्ध वैशाख कृष्ण अमावास्या गुरुवार १३ अप्रैल '७२ तक]

मार्च : १९७२ ई०

दिनांक	वार	व्रत-पर्व
१६	गुरु	वैक्रम नवर्षारम्भ। वासन्तिक नवरात्रारंभ
१९	शनि	वैनायकी गणेश चतुर्थी।
२२	बुध	अन्नपूर्णाष्टमी।
२३	गुरु	श्रीरामनमी व्रत।
२५	शनि	पुत्रदा एकादशी व्रत, सबके लिए।
२७	सोम	प्रदोष-व्रत। अनङ्गव्रत। महावीर-जयन्ती।
२९	बुध	पूर्णिमा व्रतके लिए। वैशाख स्नानारंभ। हनुमज्जयन्ती।

अप्रेल : १९७२ ई०

दिनांक	वार	व्रत-पर्व
२	रवि	संकष्टी गणेश चतुर्थी-व्रत।
७	शुक्र	शीतलाष्टमी।
१०	सोम	वरूथिनी एकादशी-व्रत, सबके लिए। श्री वल्लभाचार्य-जयन्ती।
११	मंगल	प्रदोष-व्रत।
१२	बुध	मासशिवरात्रि-व्रत।
१३	गुरु	दर्श ३०। मेष-संक्रान्ति।

विशेष : १४ अप्रैल से १३ मई १९७२ तक अधिकमास (पुरुषोत्तम-मास) पड़ता है।

अनुक्रम

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान :

प्रत्यक्षदर्शियोंके भावभीने शब्द-सुमन

(मार्च १९७२)

★

आज दिनांक ४-२-'७२ शुक्रवारको श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहाँके अतीतके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त कर मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। प्रयत्न बहुत प्रशंसनीय है। भारतीय संस्कृति ऐसे महानुभावोंपर गर्व कर सकती है। यह स्थल भविष्यमें उन्नत होकर भारतके लिए प्रकाश-स्तम्भका कार्य करे—ऐसी हार्दिक कामना है।

उमादत्त शर्मा
राज्यमंत्री, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

श्रीकृष्ण-भगवान्को नमस्कार।

रविशंकर जौहरी
आयुक्त, आगरा-मण्डल, आगरा

इस स्थानको देखकर मानव-जाति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। जब बहुत पहले इस संस्थाको देखनेका मौका मिला, उस समय और इस समयमें बड़ा अन्तर हो गया है। इसके प्रबन्धक तथा संस्थापकोंको धन्यवाद है, जो इस स्थानके पुनरुद्धारमें लगे हैं। इनके इस कार्यका महत्त्व हमारी आनेवाली पीढ़ी समझ सकेगी।

रामनिवास शाह, बद्रीप्रसाद दीक्षित
आर्य-धर्म सेवासंघ, १, डाक्टर्स लेन, नयी दिल्ली

मैंने आज श्रीकृष्ण जन्मभूमिमें भगवान्के दर्शन किये। बहुत बढ़िया भावप्रद स्वरूप है। कार्य प्रशंसनीय हैं। बाकी भागवत-भवनका काम कुछ सुस्त चलता है। इसमें शीघ्रता होनी चाहिए।

मोहनलाल जालान
१२, डेविस पार्क, कलकत्ता

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर आज हम लोग आये। पूरी मथुरामें भ्रमणके पश्चात् यहाँ आकर एक चिरस्मरणीय शान्ति मिली। यह स्थान स्वयं भारतीयताकी सहज ही अगुआई करता है। जन्मस्थानकी दीवारमें अपने आप भगवान् श्रीकृष्णकी छवि अंकित हो जाना स्वयं भगवान्की इस स्थानके प्रति एक देन है। हर भारतीय तो यहाँ आकर गौरवान्वित होता ही है, हर विदेशी भी आकर गर्वका अनुभव करता है।

मुक्तेश्वर श्रीवास्तव
राज्य संगठन-आयुक्त, पूर्वोत्तर रेलवे, गोरखपुर

आज श्रीकृष्ण-जन्मभूमिका दर्शन कर मन बहुत प्रसन्न हुआ। भागवत-भवन, जिसका निर्माण-कार्य चल रहा है, काफी प्रशंसनीय है। जब यह तैयार हो जायगा तब संसारका अद्वितीय स्थान होगा। हम इसकी सफलताके लिए हृदयसे कामना करते एवं प्रेरणा देते हैं।

पोंकरमल रूंगटा
एडवाइजर एन० एस० एम० मिल्स लि०,
नरकटियागंज, चम्पारन (विहार)

Very beautiful and marvellous place.

M. Sharma
State College,
Pennsylvania (U. S. A.)

I visited this temple–the symbol of Hindu Religion. I wish all success & good wishes to the temple and the people of India.

Ram Samuj Mishra
32, Hindu Temple, Prince Albert St.
San Fanandos
Trindad Tabago, (West Indies)

Miracle of human sculpture. No where I could get celestial bless as I found here at the birth place of Lord Krishna.

A. N. Chaubey
Law officer,
Ministry of Foreign Trade, New Delhi

Despite only one short day to this beautiful part of the world and few minutes we spent here it is not possible to see all the buildings, but we are particularly grateful to the kind gentleman and people who so warmly received us.

M. Tweedie
Vienna 1170, Austria
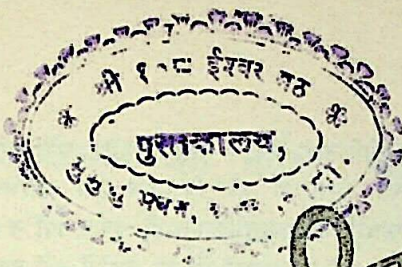
[वर्ष : ७] मथुरा, मार्च १९७२ [अङ्क : ८

शत्रुके प्रति दण्डनीतिका प्रयोग

एक दिन राजा युधिष्ठिरने, जब मैं वनमें उनसे मिलने गया था, पूछा—'प्रभो ! जब हस्तिनापुरमें द्यूत-क्रीडाका आयोजन हो रहा था, उस समय आप वहाँ क्यों नहीं पहुँच सके । कहाँ थे और किस कार्यमें संलग्न थे ?

मैंने कहा—'राजन् ! यदि मैं उन दिनों द्वारकामें या उसके निकट होता तो आप इस घोर संकटमें नहीं पड़ते । मैं बिना बुलाये भी उस द्यूत-गोष्ठीमें आ पहुँचता और जूएके अनेक दोष बताकर सबको रोकनेकी चेष्टा करता । यदि वे मेरी बात मान लेते तो कौरवोंमें शान्ति बनी रहती और धर्मका भी पालन होता । किन्तु यदि वे लोग मेरी बात माननेसे इनकार करते तो मैं उनके प्रति बलप्रयोग भी करता और उनका साथ देनेवाले समस्त जुआरी सभासदोंको मार डालता । मेरा आनर्त-देशमें न रहना ही आपके द्यूतजनित संकटका कारण बना । द्वारकामें आनेपर सात्यकिसे मुझे आपके विपत्तिमें पड़नेका समाचार ज्ञात हुआ और मैं यहाँ आपसे मिलनेके लिए चला आया ।

'शाल्व शिशुपालका मित्र था और मुझसे द्वेष रखता था । उसने पता लगा लिया था कि मैं 'इन्द्रप्रस्थ जाकर अभी लौटा नहीं हूँ;' उन्हीं दिनों उसने द्वारकापर आक्रमण कर दिया । कई दिनोंसे वहाँ भीषण युद्ध चल रहा था; तब तक मैं यहाँसे लौटकर द्वारकाके निकट पहुँचा । उस समय मेरे सारथि दारुकने मुझसे कहा—'वृष्णिकुलनन्दन ! वह देखिए,

सौभराज शाल्व वहाँ खड़ा है। इसकी उपेक्षासे कोई लाभ नहीं। इसके वधका कोई उचित उपाय कीजिए। महाबाहो! अब शाल्वकी ओरसे कोमलता और मित्रभाव हटा लीजिए। इसे मार डालिये, अब इसको जीवित न लौटने दीजिये। शत्रु कितना ही दुर्वल क्यों न हो, बलवान्के लिए भी वह उपेक्षणीय नहीं है। घर पर बैठे हुए शत्रुको भी नष्ट करनेमें नहीं चूकना चाहिए—यह नीतिशास्त्रका कथन है; फिर जो स्वयम् आक्रामक होकर आया हो, उसकी तो बात ही क्या है? इसके वधमें विलम्ब करना बुद्धिमत्ता नहीं है। इसने आपके साथ युद्धका दुःसाहस किया और द्वारकापुरीको तहस-नहस कर डाला है। यह आपका मित्र नहीं, घोर शत्रु है; इसका शीघ्र संहार कर डालिये।'

'मैंने कहा—'सारथे! दो घड़ी और ठहरो। फिर तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो जायगी।' तब मैंने अपने अमोघ आग्नेयास्त्र—सुदर्शन चक्रका स्मरण किया। स्मरण करते ही वह मेरे हाथमें आ गया। वह अस्त्र युद्धमें दानवों और असुरोंका भी अन्त करनेवाला है। यक्षों, राक्षसों तथा विपक्षी राजाओंको भी भस्म कर डालनेमें समर्थ है। कहीं भी कुण्ठित नहीं होता है। दिव्य, अभेद्य तथा सबका सामना करनेमें समर्थ है। उसके परिधि-भागमें सब ओर तीखे छुरे लगे हुए हैं। वह उज्ज्वल अस्त्र काल, यम और अन्तकके समान भयंकर है। मैंने उस शत्रु नाशक अनुपम अस्त्रको अभिमन्त्रित करके कहा—'तुम अपनी शक्तिसे सौभ विमानको नष्ट कर दो और उसपर आसीन मेरे शत्रुओंको भी धराशायी कर दो' यों कहकर मैंने उसे शत्रुपर चला दिया।

'आकाशमें ऊपरकी ओर उठता हुआ सुदर्शन-चक्र प्रलयकालके सूर्यके समान प्रज्वलित हो गया। उस दिव्यास्त्रने सौभविमानपर पहुँचकर उसे श्रीहीन कर दिया और जैसे आरा ऊँचे काष्ठको चीर डालता है उसी प्रकार सौभ विमानको बीचसे काट डाला। सुदर्शन-चक्रसे कटकर दो टुकड़ोंमें बँटा हुआ सौभविमान महादेवजीके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए त्रिपुरकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। सौभको गिराकर चक्र फिर मेरे हाथमें आ गया। तब मैंने पुनः उसे वेगपूर्वक चलाया और कहा—'अबकी बार शाल्वको मारनेके लिए मैं तुम्हें छोड़ रहा हूँ।' तदनन्तर उस चक्रने महासमरमें बड़ी भारी गदा घुमानेवाले शाल्वके सहसा दो टुकड़े कर दिये। उसे मार कर वह तेजसे जाज्वल्यमान हो उठा। वीर शाल्वके मारे जानेपर दानवोंके मनमें सहसा भय समा गया और वे मेरे बाणोंसे पीड़ित हो हाहाकार करते हुए सब दिशाओंमें भाग गये। उस विमानके प्रासाद और गोपुर सभी नष्ट हो गये। उसमें रहनेवाली स्त्रियाँ उस जलते विमानसे उतर कर इधर-उधर भाग गयीं। इस प्रकार उस युद्धमें शस्त्रवर्षी विमान सौभका तथा उसके स्वामी आततायी शाल्वका भी अन्त हो गया। तब द्वारकामें प्रवेश करनेपर मुझे आपके दारुण संकटका पता चला। यदि मैं उस समय यहाँ आ गया होता तो या तो जूआ नहीं होने पाता या दुर्योधनके जीवनका तत्काल अन्त हो जाता। शत्रुपर यदि साम, दाम और भेदकी नीति सफल न हो सके तो शक्तिशाली पुरुषको दण्डनीतिका प्रयोग करनेमें कदापि नहीं चूकना चाहिए।'

●

नव वर्षका अभिनन्दन !

नव संवत्सर नूतन स्वर दो।
भारत सुख-सुषमासे भर दो॥

(१)

साथ शिशिरकी सर्दीके ही—
दुनियाका दुख - दर्द दूर हो
मलय - पवनके साथ प्रवाहित—
मृदु सौरभ मकरन्द पूर हो
पतझड़का हो अन्त विहँसती—
हरियाली, वसन्तका वर दो।

(२)

अमराईकी डाल-डालमें—
मंजुल मंजरियाँ सज जायें।
जहाँ मोदसे नाच नाचकर—
मधुपावलियाँ बीन - बजायें।
कलकण्ठीके मधुर रागमें
आह्लादक संगीत मुखर दो।

(३)

विक्रम-वर्ष वीर विक्रम-सा—
हममें बल-विक्रम भर जाये,
हूण-शकों-से उठे शत्रुको—
हम पलभरमें मार भगायें।
विजयी भारतके वीरोंको—
विजयोत्सवका नित अवसर दो।
नव संवत्सर नूतन स्वर दो॥

— श्री 'राम' —

श्रीराम-जन्मकी दार्शनिक पृष्ठभूमि

जगत प्रकाश्य, प्रकाशक रामू !

अनन्त श्री स्वामी करपात्रीजी

★

जिसके अनुग्रहसे जिसमें सभी जीव रमण करते हैं और जो सर्वान्तरात्माके रूपमें सबमें रमण करते हैं, वे ही मर्यादा-पुरुषोत्तम राम हैं। जिस आनन्दसिन्धु सुखराशिके एक तुषार (जल-विन्दु) से अनन्त ब्रह्माण्ड आनन्दित हो उठता है, वे ही जीवोंके जीवन, प्राणोंके प्राण, आनन्दके भी आनन्द भगवान् 'राम' हैं।

अभिज्ञोंका मत है कि यदि भगवान्का विशुद्ध सत्त्वमय, परम मनोहर, मधुर स्वरूप प्रकट न होता तो अदृश्य, अग्राह्य, अव्यपदेश्य, परब्रह्मके साक्षात्कारकी बात ही जगत्से मिट जाती। भगवान्की मधुर मूर्ति एवं चरित्रोंमें मनके आसक्त हो जानेपर उसकी निर्मलता और एकाग्रता सहज ही सिद्ध हो जाती है। निर्मल एवं एकाग्र चित्त ही भगवान्के अचिन्त्य रूपके चिन्तनमें समर्थ होता है। जैसे अंजन द्वारा शुद्ध नेत्रसे सूक्ष्म वस्तुका परिज्ञान सुगमतासे हो जाता है, वैसे ही भगवच्चरित्र एवं उनके मधुर स्वरूपके परिशीलनसे निर्मल चित्त सूक्ष्मसे सूक्ष्म भगवदीय रहस्योंको समझ लेता है।

इसके अतिरिक्त अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्रोंको प्रेमयोग प्रदान करनेके लिए भी प्रभुके लीला-विग्रहका आविर्भाव होता है। गीतोक्त साधु-परित्राण, दुष्ट-निवर्हण, धर्म-संस्थापन और अधर्माभ्युत्थान-निवृत्ति आदि कारण तो प्रसिद्ध ही हैं। इन्हीं सब भावोंको लेकर मधुमास (चैत्र) के शुक्लपक्षकी नवमीको मध्याह्नमें पुष्यनक्षत्रमें श्री भगवान् रामचन्द्रका जन्म हुआ।

अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक, भगवान्, सर्वान्तरात्मा, सर्वशक्तिमान्की भृकुटीके संकेतमात्रसे उनकी मायाशक्ति विश्वप्रपञ्चका सर्जन, पालन तथा संहार करती है। जैसे अयस्कान्त (चुम्बक) के सान्निध्यसे लौहमें हलचल होती है, वैसे ही भगवान्के सान्निध्यमात्रसे माया-शक्तिको चेतना प्राप्त होती है। जैसे झरोखोंमें सूर्य-किरणोंके सहारे निरन्तर परिभ्रमण करते हुए अपरिगणित त्रसरेणु दिखायी देते हैं, वैसे ही प्रकृतिपारदृश्वा लोकोत्तर पुरुष-धौरेयोंको भगवान्के सन्निधानमें अनन्त विश्व दिखाई देते हैं :

यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवद्धि जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति।

भगवान् अपने पारमार्थिक रूपसे निराकार, निर्विकार, निष्कल, निरीह, निर्गुण होते हुए भी मायाशक्ति-युक्त रूपसे अनादिवद्ध, स्वांशभूत जीवोंपर कृपा करके उनके कल्याणार्थ विश्वके सर्जन एवं संहारादि लीलाओंमें प्रवृत्त होते हैं। मनीषी बड़े कुतूहलसे सकल विरुद्ध-धर्माश्रय भगवान्के इस कौतुकको देखकर कहते हैं :

त्वत्तोऽस्य जन्म-स्थिति-संयमान् विभो
वदन्त्यनीहा - दगुणादविक्रियात्।

त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुद्ध्यते
त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते तथा ॥

'नाथ ! विज्ञजन निर्गुण, निरीह, अविक्रियसे ही इस विविधवैचित्र्योपेत विश्वकी जन्म, स्थिति तथा संहार बतलाते हैं। 'भला जो निरीह तथा सर्वथा निष्क्रिय है, वही निरन्तर चाञ्चल्यपूर्ण विश्वका सर्जक कैसे ?' सकृद्-दर्शनमें यह अटपटा लगनेपर भी भगवान्‌के ईश्वर और ब्रह्म दो रूप मान लेनेपर इन परस्पर विरुद्ध धर्मोंका सामञ्जस्य होनेमें कोई आपत्ति नहीं रह जाती। बात यह है कि उसके मायायुक्त ऐश्वर्य रूपमें विश्व-निर्माणके उपयुक्त निखिल क्रियाएँ हैं, पर मायारहित ब्रह्मरूपमें निरीहता और निष्क्रियता ही है। अर्थात् मायाशक्तिके सहारे होनेवाले समस्त व्यवहारोंका मायाधिष्ठान, स्वप्रकाश, विशुद्ध ब्रह्ममें उपचार होता है। वही व्यापक ब्रह्म निरञ्जन, निर्गुण, विगत-विनोद भक्तप्रेमवश श्रीमद् राघवेन्द्र रामचन्द्रके रूपमें श्री कौशल्या अम्बाकी मङ्गलमय गोदमें व्यक्त हो उठता है।

निखिल ब्रह्माण्ड-मण्डल जिसके परतन्त्र हैं, वह मायापति भगवान् भास्वती भगवती श्री कृपादेवीके परतन्त्र है, पराधीन है' और वह अनुकम्पा महारानी है दीनताके परतन्त्र ! भगवान्‌के यहाँ दीनोंकी खूब सुनवाई होती है :

जगद्विधेयं ससुरासुरं ते भवान् विधेयो भगवन् कृपायाः।
सा दीनताया नमतां विधेया ममाऽस्त्यत्नोपनतैव सेति ॥

'जो दीनता अन्यत्र अवहेलनाकी दृष्टिसे देखी जाती है, वही भगवान्‌के दरबारमें परमादरणीया है। शोक, मोह, जरा, मरण, आधि, व्याधि, दारिद्र्य, एवं दुःखोंसे उत्पीडित प्राणियोंके यहाँ दीनताकी कमी नहीं है। उसीका दुखड़ा सर्वत्र गाया जाता है। लेकिन दुर्भाग्यवश वह गाया जाता है ऐसी जगह, जहाँ कुछ मिलना-जुलना तो दूर, फूटे मुँह सहानुभूतिका एक शब्द-तक नहीं निकलता ! वहाँ तो दीनोंको मात्र अवहेलनाका पात्र बनना पड़ता है। किन्तु दीनानाथ होनेके नाते भगवान् दीनताके ग्राहक हैं। उनके सामने दीनता प्रकट करनेमें तो कृपणता होनी ही नहीं चाहिए। जैसे संघर्ष द्वारा व्यापक अग्निका सगुण-साकार रूपमें प्राकट्य होता है, किंवा शैत्यके सम्बन्धसे जलका ओला बन जाता है, वैसे ही प्रेमियोंके प्रेम-प्राखर्यसे विशुद्ध सत्त्वमयी वृत्तिरूपा श्री कौशल्या अम्बासे पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान्‌का प्राकट्य होता है।

यज्ञपुरुष द्वारा समर्पित चरुके ही विभागानुसार भगवान्‌का ही श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न रूपोंमें आविर्भाव होता है। इस सम्बन्धमें—

कुछ महानुभावोंका मत है कि साङ्गोपाङ्ग शेषशायी भगवान्‌का आविर्भाव चार रूपोंमें होता है। साक्षात् भगवान् श्रीरामके रूपमें और शेष, शंख एवं चक्र क्रमशः लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नके रूपोंमें प्रकट होते हैं—आधे अंशमें राम और आधेमें लक्ष्मण प्रभृति तीनों भ्राता। दूसरे शब्दोंमें यह भी कहा जा सकता है कि सप्रपञ्च ब्रह्मका भरतादि तीन रूपोंमें प्राकट्य हुआ, तो निष्प्रपञ्च ब्रह्मका श्रीरामके रूपमें आविर्भाव हुआ।

प्रणव (ॐ)की 'अ-उ-म' इन तीन मात्राओंके वाच्य विराट्, हिरण्यगर्भ और अव्याकृतका शत्रुघ्न, लक्ष्मण तथा भरत रूपोंमें और अर्धमात्राके अर्थ तुरीय पाद या वाच्य-वाचकातीत,

सर्वाधिष्ठान परमतत्त्वका श्रीरामरूपमें प्रादुर्भाव हुआ। निष्प्रपञ्च अर्धमात्राका अर्थ तुरीय तत्त्व ही चरुके अर्ध अंशसे और तीन मात्राओंके अर्थ सप्रपञ्च तीनों तत्त्व चरुके अवशिष्ट अर्ध अंशसे प्रकट हुए।

जैसे प्रणवकी साढ़े तीन (३॥) मात्राएँ मानी गयी हैं, वैसे ही उसकी सोलह (१६) मात्राएँ भी मानी जाती हैं। **अकारो वै सर्वा वाक्**—समस्त वाणियोंका अन्तर्भाव अकारमें ही होता है और समस्त वाक्योंका आविर्भाव होता है प्रणवसे ही। अतः प्रणवमें ही सोलह मात्राओंकी कल्पना करके उसके सोलह वाच्य स्थिर किये गये हैं। जाग्रत्-अवस्थाका अभिमानी व्यष्टि विश्व और समष्टि स्थूलप्रपञ्चका अभिमानी विराट् होता है। सूक्ष्मप्रपञ्च और स्वप्नावस्थाका अभिमानी प्राज्ञ और अव्याकृत होता है। इन सभी कल्पनाओंका अधिष्ठान शुद्ध ब्रह्म तुरीय तत्त्व माना गया है।

फिर इन एक-एकके भी चार-चार भेद किये गये हैं। जाग्रत्-अवस्थामें स्पष्ट विषय-बोध 'जाग्रत्-जाग्रत्' कहलाता है। जाग्रत्-कालमें मनोराज्यादि करते समय वह 'जाग्रत् स्वप्न' कहलाता है। शोक-मोह या हर्षविशेषमें शून्यता या स्तब्धताके समय 'जाग्रत् सुषुप्ति' एवं जाग्रत्-कालमें ही निष्प्रपञ्च ब्रह्म-दर्शनकालमें वह 'जाग्रत तुरीय' कहा जाता है।

इसी तरह स्वप्नमें स्पष्ट व्यवहार 'स्वप्न जागर', स्वप्नमें स्वप्न 'स्वप्न स्वप्न' और स्वप्नमें सुषुप्ति 'स्वप्न सुषुप्ति' और स्वाप्निक ब्रह्मानुभूति 'स्वप्न तुरीय' है। सुषुप्तिमें भी सात्त्विकी, राजसी और तामसी भेदोंसे 'सुषुप्ति जागर', 'सुषुप्ति स्वप्न' और 'सुषुप्ति सुषुप्ति' होती है। निद्राके प्रभावसे विश्व-विस्मरणकालमें अभ्यासियोंको निष्प्रपञ्च ब्रह्मका दर्शन ही 'सुषुप्ति तुरीय' है। स्थूलप्रपञ्चका भासक, सर्वानुस्यूत (सबमें ओत-प्रोत) आत्मा 'तुरीय विराट्' है तो सूक्ष्मप्रपञ्चका भासक 'अनुज्ञाता आत्मा' तुरीय हिरण्यगर्भ है। इसी प्रकार कारण-भासक अनुज्ञाता आत्मा 'तुरीय अव्याकृत' है तो सर्व-भास्यादि प्रपञ्च-वर्जित अविकल्प आत्मा 'तुरीय तुरीय' है।

इस पक्षमें तुरीय विराट् 'शत्रुघ्न, 'तुरीय हिरण्यगर्भ' लक्ष्मण, 'तुरीय अव्याकृत' भरत तो 'तुरीय तुरीय' श्रीमद्राघवेन्द्र रामचन्द्रके रूपमें प्रकट होते हैं। उनकी माधुर्याधिष्ठात्री श्रीमहाशक्ति ही श्री जनक-नन्दिनीके रूपमें प्रकट होती है।

सर्वथा पूर्णतम, पुरुषोत्तम, वेदान्तवेद्य भगवान्का ही श्रीरामचन्द्र रूपमें प्राकट्य होता है। तभी तो उनके दर्शन, स्पर्शन, श्रवण एवं अनुगमन मात्रसे प्राणियोंकी परम गति हो जाती है :

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोशलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥

जो परमतत्त्व विषय, करण, देवताओं तथा जीवको भी सत्ता-स्फूर्ति प्रदान करता है, वही श्रीरामचन्द्र रूपमें प्रकट होता है। गोस्वामीजी कहते हैं :

विषय करण सुर जीव समेता। सकल एक सन एक सचेता।
सबकर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

समष्टि-व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण समस्त प्रपञ्चमय क्षेत्रके कूटस्थ निर्विकार भासक ही भगवान् राम हैं। उनकी जन्म-जयन्तीपर हम उस परम-उपास्यके उपासक तुलसीके शब्दोंमें उनकी यह वाङ्मयी उपासना करते हैं : **जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू!** ●

व्रजभाषामें वसन्त

श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह

★

भारतमें प्रकृतिका वैभव चारों ओर बिखरा पड़ा है। ऋतुएँ समय-समयपर नये-नये रूपोंमें उन्हें अपने कोमल कर-कमलोंमें भर-भरकर रसिक-हृदयोंको भेट किया करती हैं। यही कारण है कि ऋतुओंके आगमनपर कवियोंका मन-मयूर नाच उठता है। विशेषकर वर्षा, शरद और वसन्तपर उनके उत्सव देखते ही बनते हैं। उनमें भी वसन्त तो 'ऋतुराज' ही कहा गया है। उसमें प्राचीनता—जीर्णता झुलस जाती है, पुराने पत्तोंकी जगह नये पल्लवोंका उद्गम होता और वन-उपवन सुषमासे निखर उठते हैं।

प्राचीन कालसे इन दिनों 'मदनोत्सव' मनानेकी प्रथा चली आयी है। इस उत्सवमें पहले वनों-उपवनोंमें जाकर युवक-युवतियाँ गोष्ठियोंका आयोजन किया करतीं। उसीकी परम्परामें आजका होलीका उत्सव चल पड़ा, जिसमें आनन्द-मग्न होकर नर-नारी एक दूसरेपर रंग छिड़कने और अबीर गुलाल उड़ाने लगते हैं। प्रज्ञाचक्षु 'सूर' की प्रज्ञा मुखरित हो उठती है :

वन फूले वन कोकिल बोली मधुप झंकारन लागे।
सुनि भयो शोर रोर बंदनको मदन-महीपति जागे॥
तरुन लहे नव अंकुर पल्लव जे पहेरें द्रुमतागे।
मानो रतिपति रीझ जाचकको बरन बरन दाये नागे॥
नये महीप नयी लता नये-नये फूल नये नये रस पागे।
नवल नेह नागर हरि-सँग 'सूर' रसिक अनुरागे॥

इस उत्सवका क्रीड़ा-क्षेत्र श्री वृन्दावन है। वहाँके कवियोंका सरस वर्णन इसकी शोभाको और बढ़ा देता है। श्री· छीतस्वामी गाते हैं :

वृन्दावन बिहरत जुवति जुथ संग फाग व्रजपति कुँवर,
परम मुदित ऋतुराज बसंत।
छोना मृगमद अबीर छिरकत तकि कुसुम नीर उडवत,
बंदन गुलाल निरखि निरखि मुख हसंत॥
फूले बन-उपवन वृक्ष वे पुहुप-पुंज गावत पीक मोर, कीर,
उपजत मन सुख बसंत।

करत केलि रति-विलास गावत पिक मोर, कीर
उपजत मन सुख वसंत ॥
करत केलि रति-विलास 'छीतस्वामी' गिरिधर,
श्री विट्ठलेश पद प्रताप सुमरत सब सुख वसंत ॥

इस उत्साहमें कविगण छंद-प्रबन्ध भी भूल जाते हैं :

कहा आइरी तरकि अबहीं खेलत प्रीतम संग,
एक हाथ अबीर दूजे फेंटाकर।
उन भुजन जोर मुसकाय वदन मोन्यों तें जान्यो औरन तन चितये सो,
यह न होय जिन पढ़ई इन नेननमें येही उर ॥
ज्वहिं तू उठि चली लालन अकझक रहे औरन सों जुझन लागे वे झुक गयी
उठि चल हिल-मिल तुव रंगराख और सब लागत चुनी समान
तु मधि नायक संग शोभित लाल गोपाल गिरिवरधर ॥

ऋतुराजके आनन्द-उल्लासपर कृष्णदासका यह सजीव वर्णन सुनिये :

देख री देख रितुराज आगम सखी सकल बन फूल आनंद छायो।
ताल कदली ध्वजा उमंग अति फरहरे संग ले आपनी फौज लायो ॥
कोकिला कीर गुन-गान आगे करत भृंग भेरी लिये संग आयो।
घुरत निशान घनघोर मोरन कियो करत पिक शब्दगन अति सुहायो ॥
फिरत हैं हंस पदचर चकोरन वही सैल रथ चमक चढ़ धमकि आयो।
उड़त वासध नव कुमकुमा अरगजा त्रियनके कुचन तक तम करायो ॥
पाँच ले बान चहुँ ओर छोटे प्रथम चापले आप हाथन चलायो।
दोउ कर धाय धप लरत अति विलो घेर चहुँ ओर गढ़मान ठायो ॥
परी अति खलवली नार उन मदनकी मिलनमिल स्याम अंचल फिरायो।
जीत सब सुभट कृष्णदास वृंदाविनि आय गिरिधरनके सीस नायो।

श्री मुरारीदास तो वसन्त-रागमें ही वृन्दावनके भावकी सराहना करने लगते हैं :

देखो वृंदावनकी भूमिको भाग। जहाँ राधामाधो खेलें फाग ॥
जाको शेष सहस्र मुख लहैं न अंत। गुन गावैं नारदसे अनंत ॥
जाको आगम निगम कहे तेजपुंज। सो तो हो हो करत फिरे निकुंज ॥
जाके कोटिक ब्रह्मा कोटिक इन्द्र। जाके कोटिक सूरज कोटिक चंद्र ॥
जाको ध्यान धरत मुनि रहे हार। ताको सुफल गोप मिल देत गार ॥
सोहे मोर मुकुट उर नीलमाल। ललित लाल कुंडल विशाल ॥
जाकी मुसकन बोलन चलन चाल। लखि मोह रही सब व्रजकी बाल ॥
तहँ बाजे बाजत सरस ताल। सुर-मंडल महवर धुन रसाल ॥

वीना मृदंग मुरली उपंग। बाजे रायगिय गिरगिर और चंग॥
जाको वेद कहत हैं नेति नेति। तापे हँस हँस ग्वालिन फगुवा लुत॥
राधा जू को वल्लभ उरको हार। मुरारिदास नारी नित निहार॥

श्रीकृष्णदासजी हिंडोल रागमें गाते हैं :

निरतत गावत वजावत मधुर मृदंग सप्तसुरन मिल राग हिंडोल।
पंचम सुर ले अलाप उछटत हे सप्तमान थेई ताथेई तथेई थेई कहेत बोल॥
कनक वरन टिपारों सिर कमल करन काछनी कटि छिरकत राधा करत कलोल।
कृष्णदास वृन्दावन नचवत गिरिधर पिय सुर-वनिता वारत अमोल॥

श्री हरदेव व्यासजी वसन्त-उत्सवका वर्णन करते हुए गाते हैं :

देखि सखी अति आज वन्यौं री, वृन्दा-विपिन समाज।
आनन्दित व्रज लोग भोग-सुख, सदा श्याम कौ राज॥
राधा-रवन वसन्त रचायो, पंचम धुनि सुनि कान।
धरनि गिरत सुर-किन्नर-कन्या, विथकित गगन विमान॥
किलकित कोकिल कुँजनि ऊपर, गुँजत मधुकर-पुंज।
वाजत महुवरि वेनु झाँझ डफ, ताल पखावज खंज॥
केसरि भरि-भरि लै पिचकारी, छिरकत श्यामहि धाई।
छिरकि कुँवरि वूका भरि चोवा, लई कराठ लपटाई॥
मुकलित विविध विटप-कुल वरषत पावन पवन पराग।
तन मन धन न्यौछावर कीनौ, निरखि व्यास वड़भाग॥

इस प्रेम-रंगके उत्सवमें वाहरी रंगके सिंचनका प्रतीक लेकर कवि गाते हैं :

रितु वसंत मनमन्थ कन्त संग गावति कुँवरि किसोरी।
सुर वन्धान तान सुनि मोहन रीझि कहत हो होरी॥
रंग छीट छवि अंग विराजत, भंग जलजिमनि रोरी।
वीथिनि वीच कीच मची, मानसरोवर केसरि घोरी॥
वाजत ताल मृदंग वेनु डफ मन मुहचंग उमूग न थोरी।
उड़त गुलाल अवीर कीर पिक बोलत भोरन भोरी॥
छूटी लट टूटी मालावलि, विगलित कंचुकि कटि डोरी।
'व्यास' स्वामिनी श्याम अंग भरि, सुख-सागर महँ बोरी॥

●

लोक-सेवकोंके अनुकरणीय आदर्श

लोकनायक श्रीकृष्ण

श्री रामप्यारे मिश्र

★

[आज 'लोक-सेवक' बनना एक फैशन-सा हो गया है। लेकिन पहले तो 'सेवा' ही टेढ़ीखीर है। कहा ही है : 'सेवा-धर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।' वीतराग एवं परिनिष्ठितचेता योगिजन भी इसके वास्तविक रहस्यकी थाह पा नहीं सकते। फिर, वह 'लोक' यानी लोगोंकी सेवा करना तो और भी कठिन है। एक-एक व्यक्तिकी प्रकृति या स्वभाव अलग-अलग होता है, तब सबकी एकरूप और सच्ची सेवा कैसे बने ? इसलिए जरूरी है कि सेवा करनेके इच्छुकोंको किसी एक लोक-नायकका मार्गदर्शन लेकर ही सेवाक्षेत्रमें उतरना चाहिए। वह लोक-नायक स्वयंमें सर्वपूर्ण होना चाहिए। तभी उसके अनुयायी सेवकोंसे सही लोकसेवा बन सकती है। ऐसे लोकनायकोंमें भगवान् कृष्ण सिरमौर हैं। लेखकने उनकी लोकनायकताकी साक्षी, उनके चरित्रके माध्यमके इस लेखमें देनेका प्रयास किया है।]

सर्वारिष्टहरं सुखैकरमणं शान्त्यास्पदं भक्तिदं
स्मृत्या ब्रह्मपदप्रदं स्वरसदं प्रेमास्पदं शाश्वतम्।
मेघश्यामशरीरमच्युतपदं पीताम्बरं सुन्दरं
श्रीकृष्णं सततं व्रजामि शरणं कायेन वाचा धिया॥

भारतीय साहित्य, संगीत, कला, लोकजीवन, राजनीति, धर्म, उपासना तथा दर्शन सभीको श्रीकृष्णके जीवन एवं विचारोंने अन्य लोक-नायकोंसे अधिक प्रभावित किया है—प्रेरणा देकर समुन्नत बनाया है। भारत ही क्यों, विश्वके अन्य देशोंके भी विचारक उनके सुखद एवं उत्तम गुणोंका गान करते हैं। श्रीकृष्णचरितकी विशेषताओंने अप्राकृत परब्रह्मकी लीलाको ही प्राकृत रूप दे दिया है। अध्यात्मके अवतार एवं श्रीहरिके इस मानव-रूपसे आशा, उल्लास और कर्तृत्वकी अतिसुन्दर भावधारा प्रवाहित हुई। उससे तात्कालिक निराश भारतको तेजस्विता एवं प्रकाश दोनोंकी प्राप्ति हुई। श्रीकृष्ण अप्रतिम लोकनायक थे। साधारण जनोंसे उनका जीवन कभी भिन्न नहीं रहा। गोचारण, माखनचोरी, होली-फागसे लेकर अश्व-परिचर्या, दूतकर्म, कुशल-रण-सञ्चालन एवं गुह्यसे गुह्य अध्यात्म-तत्त्वका उपदेश तक देनेमें वे सर्वत्र अग्रणी रहे।

पाण्डव सत्य, न्याय, धर्म तथा प्रीतिके पक्षधर थे, तो कौरवोंने असत्य, अन्याय, अधर्म, अर्थलोलुपता एवं कामोपासनाका मार्ग ही अपनाया। कुरुक्षेत्रके संग्राममें कौरवोंकी सेना अपार

समुद्रके समान थी, पर अर्जुन श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी नौकाका आश्रय लेकर अनायास ही उस सागरको पार कर गये। कर्ण, जयद्रथ, भीष्म, द्रोण, जरासन्ध आदिके वधमें योग देकर और सहायकों सहित कंस, कालयवन, शाल्व, शिशुपाल आदिका स्वयं वध कर श्रीकृष्णने विलक्षण बुद्धि तथा असीम शक्तिका परिचय दिया। विश्व-इतिहासमें इस प्रकार व्यापक एवं गम्भीर रूपसे अत्याचारके उन्मूलनकी दूसरी गाथा नहीं है। भगवान् वेदव्यासने तथ्य ही लिखा है : **दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वाऽतरन् वत्सपदं स्म यत्प्लवाः।'** उन्होंने अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध कुरु-पाण्डवोंके सन्तान-बीज राजा परीक्षित्की माताके गर्भमें प्रवेशकर उनकी रक्षा की थी।

श्रीकृष्णकी व्रज-मथुराकी बाल एवं किशोरलीलाएँ, गोचारण, माखन-चोरी, वंशी-वादन तथा कालिय-दमनकी क्रीड़ाएँ सहस्रों वर्षोंसे भारतके भावुक भक्तों तथा निम्बार्क, चैतन्य, चण्डीदास, मध्व, नरसी, वल्लभाचार्यके समान महान् पुरुषोंके मन-प्राणको आप्यायित करती रही हैं। भारतीय नारियाँ अपने बालकोंको गोविन्द, गोपाल, मोहन, माधव, दामोदर जैसे नामोंसे पुकारते समय मनमें श्रीकृष्णका स्मरणकर अपनेको यशोदा-देवकी-सी पुण्यात्मा मानती हैं। श्यामसुन्दर, राधारमण, यशोदानन्दन, मुरलीमनोहर, गोवर्धन, व्रजरत्न सदृश उनके नाम घर-घरमें नित्य उनकी स्मृति जगाते हैं। पारिवारिक उत्सवों, मेलों, लोकपर्वोंके अवसरपर समस्त भारतमें श्रीराम, श्रीशिव एवं श्रीकृष्णके ही गीत गाये जाते हैं। जन्माष्टमीके अवसरपर विशेषतः कारागारोंमें श्रीकृष्णका जन्मोत्सव अत्यन्त आकर्षक ढंगसे मनाया जाता है।

ऋग्वेद, छान्दोग्य, कौषीतकी उपनिषद्, महाभारत, हरिवंश, श्रीमद्भागवत, विष्णु, पद्म, वायु, वामन ब्रह्मवैवर्त पुराण, माघ, भास, जयदेव, सूर, व्रजभाषाके अष्टछापके विख्यात कृष्णभक्त कवियों तथा इस युगके सत्यनारायण, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा रत्नाकरजीके काव्य तो श्रीकृष्ण-कथाके स्रोत-सागर हैं ही; लोकजीवनमें भी उनके चरितके विविध भावोंके गीत व्रजमें ही नहीं, आसेतु-हिमाचल मुखरित हैं। श्रीकृष्णभक्त अनेक सम्प्रदायोंमें लक्ष-लक्ष लोग **श्रीकृष्णः शरणं मम** की भावनासे उनकी उपासना करते हैं। भारतीय साहित्यके बहुत बड़े-बड़े अंश—संस्कृत, बँगला, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओंमें श्रीकृष्णको नायक मानकर काव्य, नाटक, स्तोत्र आदिकी रचना की गयी है। हिन्दी-साहित्यके स्वर्णयुग भक्तिकालकी कृष्णभक्ति-शाखाके कवियोंको विशेष समादर मिला। रीतिकालकी कुछ कलामयी कृतियाँ श्रीकृष्णचरितका आश्रय पाकर ही आजतक प्रतिष्ठा पा रही हैं।

श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, जरा और मृत्यु—इन छः ऊर्मियोंवाले भवसागरको अनायास ही पार कर जाता है। उनके जन्मके कारण मथुराकी महिमा बढ़ गयी। वहाँका क्षणमात्रका निवास वाराणसीके सहस्रवर्ष वासके समान पुण्यप्रद माना जाने लगा। यथा—

पूर्णं वर्षसहस्रं तु वाराणस्यां हि यत् फलम्।
तत्फलं लभते देवि मथुरायां क्षणेन हि॥

श्रीकृष्ण-चर्चा भगवती गंगाजीकी ही भाँति मनुष्योंको पवित्र कर देती है :

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि।
वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा ॥

जैसे शिवपुरी काशीकी पञ्चक्रोशीके कंकड़ भी शंकर हिमालयका कण-कण पावन और विन्ध्याटवीका पग-पग विभूति-भूषित है, वैसे ही चौरासी कोसकी श्रीकृष्णलीला-भूमि व्रज भी है। इसमें उनकी जन्मभूमि मथुरा है, जहाँके रजःस्पर्शसे ही मुक्ति सुलभ हो जाती है। परमानन्द गोविन्दका गुह्यधाम वृन्दावन, उद्धव-गोपियोंका संवाद-स्थल ज्ञान-गुदड़ी, नन्दग्राम, श्रीकृष्णकी ह्लादिनी शक्ति एवं प्राणप्रियतमा नित्यनिकुञ्जेश्वरी राधाकी पितृभूमि बरसाना, इन्द्रका गर्व दूरकर जहाँ व्रजवासियोंके हितार्थ श्रीकृष्णने ऊंगलीपर पर्वत उठा लिया था वह गोवर्धन, यमुनातट और वंशीवट सभी पूज्यतम स्थान है। उक्त स्थल आज भी श्रीकृष्णकी स्मृति साकार कर देते हैं।

भारतके चार धामोंमें बदरीनाथको सत्ययुग, रामेश्वरको त्रेता, द्वारिकाको द्वापर तथा पुरीको कलियुगका तीर्थ माना जाता है। स्पष्टतः द्वारिका एवं पुरीमें श्रीकृष्णकी ही पूजा होती है। त्रेताके जन-मन-रञ्जन श्रीरामके पश्चात् श्रीकृष्ण ही ऐसे महान् पुरुष उत्पन्न हुए जो भारतीय जन-मनको स्फूर्ति, तेज, ओज, शक्ति, विवेक एवं आत्मतत्त्वका निर्देशकर प्राणवान् बनाते हैं। सप्तपुरियोंमें मथुरा और द्वारका पुरियोंका सम्बन्ध श्रीकृष्णसे था। श्रीकृष्णके जन्मके समय ब्रह्मादि देवोंने यथार्थ ही कहा था :

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य।
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥

(श्रीमद्भागवत १०.२.२९)

'आप ज्ञानस्वरूप आत्मा हैं। चराचर जगत्के कल्याणके लिए ही अनेक रूप धारण करते हैं। आपके वे रूप विशुद्ध, अप्राकृत और सत्त्वमय होते हैं। सन्त पुरुषोंको सुख एवं दुष्टोंको दुष्टताका दण्ड भी देते हैं। श्रीकृष्णके मंगलमय नाम-रूपोंका श्रवण, कीर्तन, स्मरण, और ध्यान करनेवाले तथा उनके चरण-कमलोंकी सेवामें ही चित्त लगाये रखनेवालेको पुनः जरा-मृत्युरूप संसार-चक्रमें नहीं पड़ना पड़ता।'

श्रीकृष्णके सभी रूप विशिष्ट एवं नयनाभिराम हैं, जिनमें कुछ अविस्मरणीय इस प्रकार हैं। धेनुक-असुरका वधकर श्रीकृष्ण व्रजको ओर आ रहे हैं। उनकी घुंघराली अलकोंपर गौओंके खुरोंसे उड़ी धूल पड़ी हुई है। सिरपर मोरपंखका मुकुट और बालोंमें सुन्दर-सुन्दर वन्य पुष्प गुंथे हुए हैं। उनकी दृष्टि अत्यन्त रुचिर एवं मुसकान मधुर है। वे मधुर-मधुर मुरली बजा रहे हैं। साथी ग्वालवाल उनकी ललित कीर्तिका गान कर रहे हैं। श्रीकृष्ण-दर्शनके लिए लालायित गोपियाँ घरसे बाहर आ गयीं।' इससे भी अधिक सौन्दर्यका आकर्षण क्या हो सकता है ? :

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम्।
वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः ॥

(भाग० १०.१५.४२)

श्रीकृष्णको गोपियाँ मनकी आँखोंसे देख रही हैं। वे ग्वालबालोंके साथ सिरपर मोर-पंख, कानोंमें कर्णिकार, शरीरपर पीताम्बर, वैजयन्ती माला धारण किये अमृतभरे अधरोंसे वंशी बजाते नटवर-वेशमें वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं। अनुगामी गोपकुमार उनकी कीर्ति गा रहे हैं :

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥
(भाग० १०.२१.५)

अनन्तर ये ही श्रीकृष्ण मल्लयुद्धमें वज्रसे भी अधिक कठोर सिद्ध हुए, जब उन्होंने चाणूर-मुष्टिकको पछाड़ा। पुरुषोंमें सर्वोत्तम, स्त्रियोंके लिए मूर्तिमान् स्मर, गोपोंके आत्मीय, दुष्ट-नृपोंके शास्ता, माता-पिताके लिए नन्हें शिशु, कंसको मृत्यु, साधारण व्यक्तियोंको विराट्, योगियोंको परमतत्त्व तथा वृष्णियोंको श्रेष्ठ देवता प्रतीत होते हैं। बलराम-सहित श्रीकृष्णने जब कंसकी रंगशालामें प्रवेश किया, तब उनकी इन्हीं विशेषताओंने उनके प्रति लोगोंकी दृष्टि विशेष आकृष्ट की थी :

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः॥
(भाग० १०.४३.१७)

समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा विज्ञानके अधिष्ठान होनेके कारण ही इनको लोग 'भगवान्' कहने लगे।

त्रेताका रावण विस्तृत क्षेत्रमें तपस्वियोंको पीड़ा दे रहा था। उसके अनुचर यज्ञ-विनाशक और लोक-पीड़क थे। लंकामें अर्थ-कामकी पूजा हो रही थी। रावणकी रंगशालामें विविध प्रकारकी मदिराओंका प्रयोग होता था। मांसभक्षी राक्षस उन्मुक्तभोगी हो गये थे। उन्होंने ऋत्विजोंकी हत्याकर उनकी हड्डियोंका पर्वत ही खड़ा कर दिया था। श्रीरामने इन सभी आततायियों, विशेषतः लोककण्टकोंका वधकर मर्यादा स्थापित कर दी। लेकिन श्रीकृष्णके कालकी बातें ही और थीं। उनके माता-पिता कारागारमें बन्दी थे। उनके कई अग्रजोंका निर्ममतापूर्वक क्रूर वध कर दिया गया था। स्वयं उनके वधके लिए कितने ही प्रयास किये गये। कंसवधतक उनका प्रतिक्षण संकटका था। प्राग्ज्योतिष-पुर, मगध, मथुरा, हस्तिनापुर और अन्ततः द्वारकातककी विनाश-लीलाओंके श्रीकृष्ण स्वयं कर्ता तथा अनासक्त द्रष्टा थे। उस युगमें सारा देश अत्याचार एवं अन्यायके चक्रवातमें पड़ गया था। भोगैश्वर्यप्रसक्त लोगोंकी बुद्धि अव्यवसायात्मिका हो गयी थी। श्रीकृष्णने व्यक्ति, समाज और लोकको एक स्वस्थ दृष्टिकोण दिया। 'गीता'के माध्यमसे आत्माको अमरताका पावन सन्देश दिया। देशकी अकर्मण्यताको पौरुषमें परिवर्तित कर दिया। उन्होंने नरके प्रतिनिधि अर्जुनको बताया :

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ (गीता २.३)
उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नाऽऽत्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ (६.५)
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ (६.३२)

वीरता, आत्मसम्मान, विश्वबन्धुत्वकी इसी भावनासे प्रभावित होकर उन्होंने सब कुछ किया। प्राग्ज्योतिषपुरके नरकासुरको मारकर उन्होंने सहस्रों नारियोंको कारागारसे मुक्त किया। मगध देश जरासन्धके उपद्रवोंसे त्रस्त था। भीम द्वारा उसका वध करवा दिया। व्रजमें पूतना, शकट, तृणावर्त, वत्स, बक, अघ, प्रलम्ब-जैसे असुरोंका संहार कर उसे निरापद बना दिया। कालिय नागका दमन कर दिया, फलतः यमुनाजल मनुष्यों और पशुओंके पीने योग्य हो गया। चीर हरणकर गोपियोंको सामाजिक शिक्षा एवं साथ ही 'निरावरणता' का दार्शनिक संकेत भी दिया। गोवर्धन धारणकर उन्होंने इन्द्रपूजाकी परम्परा तोड़ी। जरासन्ध, कालयवन, शिशुपाल, दुर्योधन जैसे संघवद्ध दुर्नीतिके दुर्दान्त राजाओंका दमन उनकी पारदर्शी राजनीति एवं बुद्धि-गरिमाका ही परिणाम था।

छल-प्रपञ्चमय महाभारत-युद्धके पश्चात् श्रीकृष्णके ज्ञान एवं पौरुष दोनोंकी प्रतिष्ठा सदा-सदाके लिए हो गयी। उन्होंने **न जायते म्रियते वा कदाचित्** की भावना हर भारतीयमें भर दी। उसीसे प्रभावित कितने ही क्रान्तिकारी भारतकी रक्षाके लिए 'गीता'की पुस्तक हाथमें लेकर फाँसीका झूला झूल गये। संसार-त्यागी, विरक्त संन्यासी नित्य प्रातः प्रार्थना करने लगे :

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिमवैति नित्यं तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसङ्घः ॥

भारतीय अपनेको भूतसंघ नहीं, 'निष्कल ब्रह्म' समझता है। ऐसी स्थितिकी अनुभूति होते ही राग, द्वेष, घृणा, वैमनस्य आदि मनःसंतापकारक दुर्वृत्तियोंको स्थान ही नहीं प्राप्त होता। उपनिषदोंके तत्त्व 'गीता'के इस प्रकारके विचार सभ्यताके लिए वरदान हैं। श्रीकृष्णने कर्म, ज्ञान, भक्तिमार्गोंकी उपासना द्वारा शरीर, बुद्धि, आत्मा सभीके दोषोंका निराकरण कर उन्हें आधिभौतिक, आधिदैविक एवं अध्यात्मसम्बन्धी सभी प्राप्तियोंके लिए सक्षम बनानेका केवल मन्त्र ही नहीं दिया, बाल्यकालसे जीवनके अन्तिम क्षणोंतक उनके प्रयोगों द्वारा समस्त भारतको जगा भी दिया। अर्जुन तो निमित्तमात्र था। प्रतिक्षणके जीवन-संघर्षोंने उन्हें अनासक्त योगी बना दिया था। दुर्योधन, महाभारत-कालमें भाई बलराम भी इनके विपरीत हो गये थे। जीवनप्राण राधा जो छूटी तो छूट ही गयी। जीवनके अन्तिम दिनोंमें पतझड़ भी देखनी पड़ी। शापवशात् उनके पूरे यदुवंशका विनाश हो गया। अन्ततः स्वयं भी जराव्याधके वाणोंसे विद्ध होकर शरीर छोड़ दिया।

सहस्रों वर्ष बीत गये—व्रजविहार, सान्दीपनिकी शिक्षा, सुदामाकी प्रीति, राधा-माधवकी निकुञ्ज-क्रीड़ा, महाभारत-रण-संचालन और गीताकी शिक्षा किसी शाश्वत कस्तूरी-

गन्धकी भाँति श्रीकृष्ण-कीर्तिके विविध रूप हिमालयके सर्वोच्च शिखरोंसे महासागरके तलतक अन्धकार मिटाकर प्रकाश बिखेर रहे हैं। उनका यश काव्योंमें निबद्ध है। उनकी 'गीता' प्रस्थानत्रयीमें समादृत तथा अध्यात्मचिन्तनमें मानवजातिकी अर्जित ज्ञानराशिकी कसौटी-सी सदाके लिए सबके लिए अक्षय निधि हो गयी है।

श्रीकृष्णकालीन भारतसे आजका भारत भिन्न है। वैज्ञानिक प्रगतियों, राजनीतिक क्रान्तियों, सामाजिक परिवर्तनोंसे वह पहलेसे बहुत दूर चला आया है। आज हम भी पाश्चात्त्योंकी भाँति इन्द्रियों और उनकी वृत्तियोंकी तृप्तिमात्रके प्रयासमें संलग्न हैं। मन-बुद्धिसे परे आत्मसुखप्राप्तिके लक्ष्यको विस्मृत कर रहे हैं। भारतीय भाषा, नीति, आहार-विहार, जीवनपद्धति और संस्कृति जिनका श्रीकृष्णने निर्माण किया था—सुधारा-सँवारा था, आज उपेक्षित एवं तिरस्कृत हैं। राजनीति स्वार्थी व्यक्तियोंकी व्यावसायिक वृत्ति बन गयी है। शिक्षा भी व्यवहार और सिद्धान्त दोनों दृष्टियोंसे हीन हो गयी है। विद्यालय और विश्वविद्यालय भले ही किसी अन्य कार्योंके लिए उपयोगी हों, विद्यार्थीकी शिक्षा एवं शरीर, मन तथा आत्माके विकासका कार्य तो करते ही नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वत्र आसुरी प्रवृत्तियाँ ही बढ़ रही हैं। रोगके सारे लक्षण स्पष्ट हैं। लेकिन उसका औषध-विधान भी भगवान् कृष्ण गीतामें कह गये हैं: 'मन्मना भव, मद्भक्तो भव···' के सिद्धान्तपर चलानेवाला लोकसेवक ही ऐसे समय देशकी प्रतिष्ठा सुरक्षित रख उसे उठा सकते हैं। लोकनायक श्रीकृष्णका यह चरित्र-चिन्तन इस दिशामें कुछ भी काम आये, तो लेखक अपना प्रयास सार्थक समझेगा।

●

जंगलमें मंगल होता है!
राग-रागिनी कोयल है गाती जग-मग खोता है।
चिड़ियोंकी मीठी बोलीसे चेतन भी सोता है॥
मलयानिल रसके सागरमें ही खाता गोता है!
जड़ अपना जीवन पाता है कण-कणको ढोता है।
पानी गिरता है पहाड़से बहता चिर सोता है॥
नयनोंके झिलमिल परदोंसे फिर भी मन रोता है!

—श्रीरामखाल

श्रीकृष्णने जिन्हें धर्मका सार समझाया

श्री 'शङ्खपाणि'

★

धर्मराज युधिष्ठिर फूँक-फूँककर कदम रखते थे। धर्मके विरुद्ध उनका एक पग भी नहीं उठता था। वे सर्वत्र धर्ममूर्ति और धर्मावतार माने जाते थे। क्षमा, दया आदि सद्‌गुण तो उनमें कूट-कूटकर भरे थे। उनका निर्णय ही 'धर्म' समझा जाता था। ऐसे एक संयमशील राजर्षि होते हुए भी वे धर्मविषयक व्यामोहसे न बच सके। तब भगवान् श्रीकृष्णने अवसरोचित सलाह देकर उनका व्यामोह दूर किया। आइये, एकबार उनके सम्पूर्ण जीवनपर विहंगम-दृष्टि डालें।

युधिष्ठिर महाराज पाण्डुके क्षेत्रज पुत्र थे। धर्मराज यमदेवकी कृपासे कुन्तीके गर्भ द्वारा इनकी उत्पत्ति हुई। जन्मकालमें हुई आकाशवाणीके अनुसार ये धर्मात्माओंके अग्रगण्य, पराक्रमी और सत्यवादी थे। शतशृङ्ग-निवासी ऋषियों द्वारा इनका नामकरण-संस्कार किया गया। वसुदेव-पुरोहित काश्यपने इनका उपनयन किया। राजर्षि शुकसे शिक्षा पाकर ये तोमर चलानेकी कलामें पारंगत हो गये थे। रथयुद्धमें भी अत्यन्त कुशल माने जाते थे।

धृतराष्ट्र द्वारा युवराज-पदपर अभिषिक्त किये जानेके पश्चात् युधिष्ठिरने शील, सदाचार और प्रजा-पालनकी प्रवृत्ति द्वारा अपने पिता महाराज पाण्डुकी भी कीर्तिको ढँक दिया था। प्रजाका इनपर बड़ा अनुराग था। जब ये अपने भाइयोंके सहयोगसे इन्द्रप्रस्थमें महाराजके पदपर प्रतिष्ठित हुए, उन दिनों प्रतिदिन दस हजार ब्राह्मणोंको सोनेकी थालियोंमें भोजन देते थे। इनके द्वारा आयोजित राजसूय-यज्ञमें लाख-लाख ब्राह्मण एक साथ भोजन करते और उनके भोजनके पश्चात् शङ्ख-ध्वनि होती। तदनन्तर पुनः दूसरी वैसी ही पंगत बैठती।

इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर सर्वश्रेष्ठ नरेश थे। फिर भी उनके जीवनमें अनेक ऐसी बातें हुईं, जो उन जैसे धर्मात्माके लिए कभी उचित नहीं कही जा सकतीं। उन्होंने माता कुन्तीके आदेशकी आड़ लेकर एक ही द्रौपदीके साथ पाँचों भाइयोंके विवाहका निर्णय दे दिया, जब कि यह बात लोक और वेदके विरुद्ध थी। स्वयं कन्याके पिता भी अपनी रुचिके अनुसार द्रौपदीका व्याह केवल अर्जुनके साथ करना चाहते थे।

अच्छे राजा और राजनीतिज्ञ होनेपर भी वे जुएके व्यसनमें आसक्त थे। द्यूत कभी धर्म नहीं माना गया। राजशास्त्रमें इसको व्यसन बताया गया है और राजाको इससे दूर रहनेकी सलाह दी गयी है। स्वयं भी वे द्यूतके दोषोंसे अपरिचित नहीं थे। स्वयं ही शकुनिके साथ हुई वार्तामें उन्होंने जुएका अनौचित्य सिद्ध किया था, फिर भी धृतराष्ट्रकी आज्ञाकी आड़

लेकर वे उसी जुएमें प्रवृत्त हो गये। उसमें आसक्तिके कारण इतने विवेकशून्य वन गये कि अपना सर्वस्व दाँवपर लगा दिया। सारा धन, राज्य, वन्धुवर्ग, धर्मपत्नी महारानी द्रौपदी तथा अपने आपको भी जुएमें हार गये। उनकी इस अनीतिके कारण ही सती द्रौपदीको भी कौरव-सभामें घोर अपमान सहन करना पड़ा।

यद्यपि धृतराष्ट्रने एकबार उनका हारा हुआ सब कुछ इन्हें लौटाकर इन्द्रप्रस्थ लौट जानेकी आज्ञा दे दी; फिर भी वे कपटी कौरवोंके आमन्त्रणपर पुन: द्यूतके लिए मार्गसे लौट आये और उन्हींकी शर्तपर पुन: सब कुछ हारकर वनवासके लिए विवश हुए : इससे उनकी द्यूतविषयक घोर आसक्ति प्रमाणित होती है।

वनवासके समय भगवान् श्रीकृष्ण उनसे आकर मिले। द्यूतके दोषोंका वर्णन करते हुए उन्होंने यह बताया कि पाण्डवोंपर यह विपत्ति इसलिए आयी कि 'मैं द्यूतके दिनोंमें शाल्वके साथ युद्धमें फँसा रहनेसे वहाँ उपस्थित नहीं रह सका। अन्यथामें इस अनर्थकारी द्यूतका खेल ही होने नहीं देता।' द्यूत और उसके परिणामको चुपचाप स्वीकार कर लेना युधिष्ठिरका धर्मसम्वन्धी व्यामोह ही था। वनमें रहकर उन्होंने बृहदश्वसे द्यूतविद्याका रहस्य सीखा, किन्तु उसके द्वारा कौरवोंको पराजित करनेका कोई प्रयास नहीं किया।

वनसे लौटनेपर जव युधिष्ठिरने अपना राज्य माँगा और कौरवोंने सुईकी नोक बराबर भी भूमि लौटानेसे इनकार कर दिया; तब श्रीकृष्णने ही दुर्योधनको फटकारकर उससे कह दिया कि 'आज तो तू माँगनेपर पाँच गाँव भी नहीं देता, किन्तु युद्धमें जब मारा जायगा, तब पाण्डव सारे राज्यपर अधिकार कर लेंगे।' श्रीकृष्णने ही कर्तव्यविमूढ युधिष्ठिरको उस समय युद्ध करना ही कर्तव्य बतलाया।

युधिष्ठिर यद्यपि नाम और गुण दोनोंसे युधिष्ठिर थे—उन्होंने अनेक बार राजा शल्य और आचार्य द्रोणको भी पराजित एवं मूर्च्छित किया, फिर भी अनेक अवसरपर उनकी भीरुता और पलायनका भी उल्लेख मिलता है। उन्होंने भीष्मसे भयभीत होकर धनुष-बाण फेंक दिये थे; क्योंकि वे नि:शस्त्रको नहीं मारते थे। द्रोण और कर्णसे भी उन्हें पराजयका कष्ट भोगना पड़ा था। युद्धके प्रथम दिन जब कौरव और पाण्डवोंकी सेना परस्पर जूझनेके लिए आमने-सामने खड़ी थी, तब वे अकेले और पैदल ही शस्त्र त्यागकर भीष्म आदिसे युद्धके लिए आज्ञा प्राप्त करनेके निमित्त कौरव-सेनामें चले गये थे। उस समय शत्रुपक्ष चाहता तो बिना युद्ध किये ही उन्हें बन्दी वना लेता। राजनीतिकी दृष्टिसे उनके इस दु:साहसका समर्थन नहीं किया जा सकता।

युधिष्ठिर कभी झूठ और कपटसे काम नहीं लेते थे। फिर भी द्रोणाचार्यकी मृत्युके लिए जब पाण्डवपक्षसे अश्वत्थामा नामक हाथीको मारकर अश्वत्थामाके मारे जानेकी खबर उड़ायी गयी, तब उसकी सत्यताको जाँचनेके लिए आचार्यने केवल युधिष्ठिरसे पूछा और उन्हींपर विश्वास एवं भरोसा किया। युधिष्ठिरके भी मुखसे अश्वत्थामाके मरणका समाचार पाकर आचार्यने शस्त्र त्याग दिया और उस समय धृष्टद्युम्नने उनका सिर उड़ा दिया। इस अन्यायका विरोध केवल अर्जुनने किया, युधिष्ठिरने एक शब्द भी नहीं कहा। शत्रु-पक्षसे झूठ बोलना युद्ध-

नीतिके अनुसार अनुचित नहीं है। फिर भी इस झूठको सचाईसे स्वीकार करना चाहिए था, **नरो वा कुञ्जरो वा** कहकर उस छल और असत्यपर परदा नहीं डाला जा सकता। ऐसे अवसरपर भगवान् श्रीकृष्णने ही द्रोणवधकी युक्ति बताकर युधिष्ठिरको वैसा कहनेके लिए आदेश दिया था। उसे सीधे मान लेनेमें ही उनका कल्याण था। 'नरो वा कुंजरो वा' इस ढोंगसे सत्यकी रक्षा करनेका प्रयास उपहासास्पद ही कहा जायगा।

युधिष्ठिर स्वयं तो कर्णसे परास्त हो शिविरमें आकर लेटे थे, किन्तु जब अर्जुन उनका कुशल-समाचार पूछनेके लिए वहाँ आये तो वे उनकी और उनके गाण्डीवकी निन्दा करने लगे। इसका जो घोर परिणाम प्रकट हुआ, उससे श्रीकृष्णकी ही सुबुद्धिने पाण्डव-पक्षकी रक्षा की।

अर्जुनको तो युद्धसे पहले ही व्यामोह हुआ। उन्हें जाति-धर्म और कुलधर्मका नाश दिखायी देने लगा था। किन्तु युधिष्ठिरको उस समय धर्मकी कोई हानि नहीं दिखायी दी। उन्हें तो उस समय धर्मकी नैया डूबती दीखने लगी, जब अठारह दिनोंका युद्ध पूरा हो चुका था। भीषण कुलसंहार और असंख्य जनसंहारकी घटना घटित हो चुकी थी। भारतवर्षके वीरोंका महासंहार हो जानेके बाद उनकी धर्मबुद्धि जागी। फिर तो वे राज्य छोड़कर वनमें जानेको उद्यत हो गये। मुनिवृत्तिकी प्रशंसा करने लगे। उनके इस श्मशान-वैराग्यका नशा तब उतरा, जब भगवान् श्रीकृष्णने उनको समझाया और ऋषियों द्वारा प्रबोध करवाया।

× × ×

अर्जुन साक्षात् नरस्वरूप—नारायण ऋषिके भाई कहे गये हैं। उन्हें धर्ममय विशाल वृक्षका तना कहा गया है। वे भी पाण्डुके क्षेत्रज्ञ पुत्र हैं। इन्द्रकी कृपा प्राप्तकर कुन्ती देवीने उनको अपने गर्भसे उत्पन्न किया था। इन्द्रके अंशसे उनका प्राकट्य हुआ। फाल्गुन मासकी पूर्णिमाको दोनों फाल्गुनी-नक्षत्रोंकी सन्धिमें इनका जन्म हुआ था, इसीसे इनका एक नाम 'फाल्गुन' भी है। उनमें धार्मिक निष्ठा बहुत थी। वे वीर क्षत्रिय स्वभावके थे। लेशमात्र भी भीरुता उनमें नहीं थी। युद्धसे पीछे हटना तो वे जानते ही नहीं थे। उनकी दो प्रतिज्ञाएँ थीं—कभी दीनता न दिखाना और युद्धसे पीछे न हटना : **अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्।** उनके जीवनका इतिहास अदम्य शौर्यकी गाथाओंसे परिपूर्ण है। भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोपम प्रिय सखा थे। स्वर्गमें जाकर देवराज इन्द्रकी सहायता की थी और अजेय कालकेय तथा निवातकवच नामक दानवोंको हराया था। पाशुपत अस्त्र सिद्ध किया था। विराट्नगरमें सम्पूर्ण कौरव-वीरोंको, जिनमें भीष्म, द्रोण तथा कर्ण भी थे, युद्धमें जीतकर विराट्के गौओंकी रक्षा की थी। वे ही अर्जुन महाभारत-युद्धके आरम्भमें धर्मसंमूढचेता हो गये। कार्पण्यदोषने उनके वीरोचित स्वभावको अभिभूत कर दिया। युद्धसे विमुख हो गये और श्रीकृष्णसे कर्तव्यकी जिज्ञासा करने लगे : **कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे......।'**

उन्हें युद्धमें स्वजनवधका पाप दिखायी देने लगा। स्त्रियाँ दूषित होंगी और वर्णसंकर सन्तानें उत्पन्न करेंगी, आदि अनर्थोंका भय उन्हें सताने लगा। उनके इस व्यामोहको दूर करनेके

लिए भगवान् श्रीकृष्णको बड़े श्रमसे योगस्थ होकर गीता-ज्ञानका उपदेश करना पड़ा। विश्वरूप-दर्शन कराना तथा अनेक प्रकारकी शङ्काओंका समाधान करना पड़ा। तब कहीं वे इस स्थितिमें पहुँचे।'

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

इस प्रकारका उद्‌गार प्रकट कर सके और चुपचाप भगवान्‌के आज्ञा-पालनको तैयार हो गये :

अर्जुनको अपने गाण्डीव धनुषपर बड़ी ममता और आस्था थी। वह वरुण देवताका अस्त्र था, जिसे अग्निदेवने अर्जुनको सुलभ कराया था। वह धनुष शत्रुओंके लिए कालरूप था। वह अकेला ही एक लाख धनुषोंके समान था। उसपर किसी चोटका चिह्न नहीं आया था। वह देवता, दानव और गन्धर्वोंसे पूजित था। उसे ब्रह्माने एक सहस्र वर्ष, प्रजापतिने पाँच सौ वर्ष, इन्द्रने पचासी वर्ष, सोमने पाँच सौ वर्ष तथा वरुणने सौ वर्षोंतक धारण किया था। गाण्डीवका निर्माण वज्रकी गाँठसे हुआ था। अर्जुनसे यदि कोई कह दे कि 'गाण्डीव धनुष दूसरेको दे दो,' तो वे उसका मस्तक काट लेनेकी उपांशु प्रतिज्ञा कर चुके थे।

एक दिन कर्णवध किये बिना ही जब अर्जुन घायल युधिष्ठिरका कुशल जाननेके लिए उनके पास गये, तो कुपित हुए युधिष्ठिरने उनसे यही बात कह दी : 'तुम अपना गाण्डीव किसी औरको दे दो।' फ़िर तो अर्जुन उस प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिए युधिष्ठिरका वध करनेको उद्यत हो गये। कर्णहन्ता अर्जुन युधिष्ठिरका घातक बनना ही चाहते थे कि भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें धिक्कारा और कहा : 'तुमने कभी धर्मात्माओंका संग नहीं किया, इसीलिए धर्मके सूक्ष्म रूपको नहीं समझते। गुरुजनका साक्षात् वध महापाप है। तुम प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिए अपने भाईके प्रति अपमान या तिरस्कारसे भरे वचन कह सकते हो। तुम्हारे द्वारा किया गया ऐसा बर्ताव ही उनके वधके समान हो जायगा।'

अर्जुनने यही किया, इससे युधिष्ठिरके प्राण तो बच गये; किन्तु अब अर्जुन आत्म-हत्याके लिए उद्यत हो गये। उन्होंने तलवार खींच ली। श्रीकृष्णने फिर रोका और कहा : 'यह कैसी मूर्खता करने जा रहे हो?' 'मैंने बड़े भाईका अपमान कर दिया, अब इस अधम जीवनको नहीं रख सकता!' यह उत्तर सुनकर श्रीकृष्णने कहा : 'आत्महत्या तो और भी भयंकर पाप है। यदि तुम्हें प्रायश्चित्त ही करना है तो अपने मुँहसे अपनी प्रशंसा कर डालो। आत्मप्रशंसा आत्महत्याके ही समान है।' अर्जुनने ऐसा ही किया। अब युधिष्ठिर अर्जुन द्वारा किये गये अपमानसे दुःखी हो वनमें जानेको उद्यत हो गये, तब भगवान् श्रीकृष्णने वस्तुस्थिति समझायी : 'अर्जुन कदापि आपका अपमान नहीं कर सकते। वह तिरस्कार तो प्रतिज्ञाकी रक्षामात्रके लिए किया गया था।' इस प्रकार उस समय श्रीकृष्णने धर्मका सारतत्त्व समझा-कर युधिष्ठिर और अर्जुन दोनोंकी रक्षा की।

× × ×

कर्ण महान् वीर योद्धा थे। उनका जन्म सूर्यदेव तथा कुन्तीसे हुआ था। वे जन्मकालसे ही अभेद्य कवच, कुण्डल एवं किरीटसे सम्पन्न थे। इन सबके कारण उनका वध करना किसीके

लिए भी असम्भव था। ये बड़े धर्मात्मा थे और किसी ब्राह्मणके माँगनेपर अपना सर्वस्व देनेको तैयार रहते थे। अतएव महादानी कहलाते थे। दुर्भाग्यवश उनका द्रौपदी और पाण्डवोंसे द्वेष था। उनके प्रति किसी भी अनुचित बर्तावमें उन्हें अधर्म नहीं दिखायी देता था। साथ ही दैवयोगसे दुर्योधनके साथ उनकी घनिष्ठ मित्रता हो गयी थी। वे उसके लिए अन्याय करनेसे भी नहीं हिचकते थे। किन्तु उनमें मित्रका वास्तविक हित करनेकी सुबुद्धि नहीं थी। भगवान् श्रीकृष्णके यह बतानेपर भी कि 'तुम कुन्तीके पुत्र और युधिष्ठिरके बड़े भाई हो, पाण्डवोंका राज्य तुम्हें मिलेगा', उन्होंने वह सब स्वीकार नहीं किया। वे चाहते तो पाण्डवोंका राज्य लेकर स्वेच्छासे दुर्योधनको दे सकते थे। इस तरह बिना रक्तपातके ही दुर्योधन राजा बन सकता था और घोर नरसंहार बचाया जा सकता था। उनके भरोसे ही दुर्योधनने युद्ध छेड़ा था। अतः कौरवकुल-संहारमें वे स्वयं प्रधान हेतु बन गये थे। उन्होंने भरी सभामें द्रौपदीको नंगी करनेकी चेष्टाका पूर्ण समर्थन किया और दुर्योधनका उत्साह बढ़ाया। युद्धमें जिन सात महारथियोंने मिलकर अकेले अर्जुन-पुत्रको निहत्थे होनेपर भी मार डाला, उन कलंकी वीरोंमें महारथी कर्ण भी एक थे।

किन्तु जब युद्धकालमें उनके रथका पहिया पृथ्वीमें धँस गया और वे उतरकर उसे निकालने लगे, उस समय उन्होंने धर्मकी दुहाई दी और कहा : 'अर्जुन ! इस समय बाण मारना अधर्म है।' तब श्रीकृष्णने चेतावनी देते हुए उनसे कहा : 'तुमने जीवनमें अनेक अवसरोंपर स्वयं धर्मकी अवहेलना की है, आज वह धर्म तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता।' इस प्रकार उनका व्यामोह दूर हुआ और अपने कुकर्मोंपर उन्हें खेद भी हुआ। कर्ण मारे गये।

× × ×

भीष्मने भी द्रौपदी-चीरहरणके प्रसंगमें मौनावलम्बन कर लिया। जब युधिष्ठिर युद्धस्थलमें उनसे आज्ञा लेने गये, तो उन्होंने अपनेको अर्थका दास बताकर दुर्योधनके पक्ष-ग्रहणका औचित्य बताया। यह सब उनका व्यामोह ही था। जब दुर्योधनने उनकी बात नहीं मानी, तब भीष्म और द्रोण युद्धसे तटस्थ हो सकते थे। फिर भी श्रीकृष्णभक्त थे, अतः भगवान्ने उन्हें सदा सम्मान ही दिया। साथ ही पाण्डवपक्ष ग्रहण करके उन्होंने सिद्ध कर दिया कि धर्म पाण्डवोंके पक्षमें ही है।

यतो धर्मस्ततः कृष्णः।

श्रीकृष्ण-वचन

जब कोई भक्त मुझे हार्दिक श्रद्धासे जल भी चढ़ाता है, तब मैं उसे बड़े प्रेमसे स्वीकार करता हूँ। परन्तु यदि कोई अभक्त मुझे बहुत-सी सामग्री अर्पित करे तो भी मैं उससे सन्तुष्ट नहीं होता हूँ। (भागवत)

पूर्ण सत्यता

श्री माताजी, श्री अरविन्द आश्रम पांडिचेरी

★

पूर्णतया सच्चा होनेके लिए आवश्यक है कि मनुष्यमें अपनी कोई पसंदगी, कोई इच्छा, कोई आकर्षण या घृणा, सहानुभूति या विरोध, राग या द्वेष न रहे। जब तुम्हारी अपनी पसंदगी रहती है, तो तुम वस्तुओंको उस रूपमें नहीं देखते, नहीं सुनते, न उस रूपमें उनका स्वाद लेते या अनुभव ही करते हो, जैसी कि वे अपनी वास्तविकतामें हैं। यदि कुछ वस्तुएँ तुम्हें प्रसन्न करती हैं, तुम्हारे अन्दर एक आकर्षण या घृणा पैदा करती हैं, तो तुम उनके वास्तविक रूपको नहीं देखते। उनकी ओर केवल अपनी प्रतिक्रिया अथवा अपनी रुचि या अरुचिकी दृष्टिसे देखते हो। इन्द्रियां उपकरण हैं, जो उसी प्रकार मिथ्या हो जाती हैं जिस प्रकार संवेदन, भावनाएँ या विचार। इसलिए यदि तुम अपने देखने, अनुभव करने या सोचनेकी सत्यताके बारेमें निश्चित होना चाहते हो, तो तुम्हें पूर्ण अनासक्तिकी अवस्थातक पहुँचना ही होगा। स्पष्ट ही यह कोई सरल कार्य नहीं। लेकिन जबतक ऐसा नहीं हो जाता, तुम्हारा इन्द्रियसम्बन्धी ज्ञान पूर्णतया सच्चा न होगा और न सत्यनिष्ठतासे ही युक्त होगा।

स्वभावतया यही सर्वोच्च अवस्था है। असत्यताके कई ऐसे स्थूल रूप भी हैं, जिन्हें प्रत्येक मनुष्य समझ सकता है। मेरे विचारसे उनपर बल देनेकी यहाँ कोई आवश्यकता नहीं। उदाहरणार्थ, मनुष्य कहता कुछ है और सोचता कुछ है। एक काम करनेका बहाना करता है, पर करता कुछ और है। एक संकल्पको व्यक्त करता है, जब कि उसका सच्चा संकल्प कुछ और होता है। मैं उस सर्वथा स्थूल प्रकारके असत्यके बारेमें बात नहीं करती, जिसमें मनुष्य जो कुछ वास्तवमें है उससे भिन्न कहता है। मैं व्यवहारसम्बन्धी उस कूटनीतिकी बात भी नहीं, करती जिसमें मनुष्य एक विशेष फल पानेके लिए ही कार्य करता है, विशेष प्रभाव उत्पन्न करनेके लिए कोई बात कहता है। मैं उन सब तथ्योंकी बात भी नहीं करती, जो तुम्हें अपना ही विरोध करनेके लिए विवश कर देते है। यह सब इतनी स्पष्ट प्रकारकी सत्यता है कि इसे प्रत्येक व्यक्ति बड़ी आसानीसे पहचान सकता है।

किन्तु कुछ अन्य प्रकारके ऐसे भी असत्य हैं, जो अधिक सूक्ष्म हैं और इसीलिए उन्हें ढूँढना अधिक कठिन होता है। उदाहरणार्थ, जब तुम्हारे अन्दर सहानुभूति और घृणाकी भावना रहती है, तो स्वभावतः ही जिस वस्तुके लिए तुम्हारे अन्दर सहानुभूति है, उसके प्रति

तुम्हारा दृष्टिकोण अनुकूल रहेगा और जिसके लिए घृणा है, उसकी ओर प्रतिकूल। यहाँ भी सत्यताका अभाव प्रकट होगा।

ऐसा भी हो सकता है कि तुम अपने आपको धोखा दो और यह न जान सको कि तुम झूठे हो। इसका कारण है तुम्हें, मानसिक असत्यताका सहयोग प्राप्त हो जाना। यह ठीक होते हुए भी कि सत्यताका नियम सर्वत्र एक-जैसा होता है, असत्यताकी अवस्थाओं और भागोंके अनुसार भिन्न-भिन्न वह रूप धारण कर लेती है।

समस्त असत्यताका स्रोत सदैव वही क्रिया होती है, जो इच्छा, व्यक्तिगत उद्देश्योंकी पूर्तिकी अभिलाषा, अहंकार और उससे उत्पन्न सीमाओंके संघात तथा इच्छासे पैदा होनेवाली विकृतियोंसे उत्पन्न होती है।

वस्तुत: सच्ची बात तो यह है कि जबतक अहंकार रहता है, तुम पूर्णतया सच्चे नहीं बन सकते, चाहे उसके लिए कितनी भी चेष्टा क्यों न करो। तुम्हें अहंकारको पार करना होगा, अपने आपको भागवत संकल्पके आगे पूर्णतया समर्पित कर देना होगा—बिना कुछ विचार रखे या हिसाब लगाये अपने आपको दे देना होगा। तभी तुम पूर्णतया सच्चे हो सकते हो, इससे पहले नहीं।

पर इसका मतलब यह नहीं कि तुम जितना अब सच्चे हो, उससे अधिक सच्चे होनेके लिए प्रयत्न न करो और यह कहो कि 'जबतक मेरा अहंकार नष्ट नहीं हो जाता, सच्चा बननेके लिए प्रतीक्षा करूँगा।' इस वाक्यको उल्टा कर यह भी कहा जा सकता है कि यदि तुम सच्चे भावसे प्रयास नहीं करोगे, तो तुम्हारा अहंकार कभी भी नष्ट नहीं होगा।

सत्यनिष्ठा समस्त सच्ची प्राप्तिकी आधारशिला है। यह साधन है, ढंग है और साथ ही लक्ष्य भी। निश्चय ही सचाईके बिना तुम बार-बार गलतियाँ करोगे और इससे जो हानि अपने आपको और दूसरोंको पहुँचाओगे, उसकी पूर्तिके लिए तुम्हें सदैव कार्य करना पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त सच्चा बननेमें एक आश्चर्यजनक आनन्द भी प्राप्त होता है। सचाईके प्रत्येक कर्ममें उसका पुरस्कार निहित है। जब मनुष्य असत्यके एक कणका भी त्याग कर देता है, तो उसे पवित्र बनने, ऊपर उठने और मुक्त होनेकी अनुभूति प्राप्त होती है। वही उसका पुरस्कार है। सचाई सुरक्षा है, संरक्षण एवं मार्गदर्शक है और अन्तमें तो यह रूपान्तरकारी शक्ति भी है।

●

भक्तिसे कल्याण

जो योगी मेरी भक्तिसे युक्त है, मेरे चिन्तनमें मग्न रहता है, उसके लिए ज्ञान-श्रवण और वैराग्यकी आवश्यकता नहीं होती। उसका कल्याण तो प्राय: मेरी भक्तिके द्वारा ही हो जाता है।

(श्रीकृष्ण-वचन, श्रीमद्भागवत)

रामराज्य या जनराज्य

'श्रीकृष्णकिंकर'

☆

भगवान् श्रीराम राजा होकर भी जनसेवक थे। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि 'मैं प्रजाके हितके लिए सर्वस्वका त्याग कर सकता हूँ।' श्रीरामके सिवा दूसरा कौन ऐसा राजा या राजकुमार होगा, जिसकी समस्त प्रजाने एकस्वरसे प्रशंसा की हो। श्रीराम जब युवराज नहीं थे, तब भी पुरवासियों और जनपदवासियोंकी भलाईके लिए सदा सचेष्ट रहते थे। अपने सुन्दर स्वभावसे समस्त प्रजाको आनन्दित करते थे। सबका मन इन्हींमें रमता था, पिताके मनमें जब इन्हें युवराजपदपर अभिषिक्त करने की इच्छा हुई, तब उन्होंने मन्त्रियों और सभासदोंसे भी सलाह ली। सबने एकस्वरसे उनके इस समयोचित प्रस्तावका अनुमोदन किया था। तत्कालीन जनताकी शुभ अभिलाषाको गोस्वामीजीने इन शब्दोंमें व्यक्त किया है :

सब बिधि सब पुरलोग सुखारी।
रामचंद मुखचंदु निहारी॥
सबके उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।
आप अछत जुवराज पद रामहिं देउ नरेसु॥

राजाने बड़ी विनयके साथ राजसभामें मन्त्रियों तथा अन्य सभासदोंके समक्ष यह प्रस्ताव रखा :

जो पाँचहि मत लागै नीका।
करहु हरषि हिय रामहिं टीका॥

मन्त्रियोंने भी विनयपूर्वक ही उत्तर दिया :

बिनती सचिव करहिं करजोरी।
जियहु जगतपति बरिस करोरी॥
जगमंगल भल काजु बिचारा।
बेगिअ नाथ न लाइअ बारा॥

श्रीरामका राज्याभिषेक समस्त राज्यके लिए मंगलमय था। जनहित ही जिस राजा या शासनका उद्देश्य हो, उसे जनराज्य नहीं तो और क्या कहा जा सकता है? जब रामको वन जानेकी आज्ञा मिल गयी, उस समय लक्ष्मण व्याकुल होकर आते हैं और श्रीरामसे आग्रह

करते हैं : 'आप मुझे भी साथ ले चलें ।' इसपर रामने उन्हें गुरु, पिता, माता, परिवार और प्रजावर्गका परितोष करनेके लिए अयोध्यामें ही रहनेकी आज्ञा दी । अन्यथा दोष होगा । उन्होंने कहा : 'जिसके राज्यमें प्रजाको दुःख हो, वह राजा नरकगामी होता है । अतः तुम वनमें न चलकर यहीं रहो ।' गोस्वामीजीके शब्दोंमें उक्त भावना इस प्रकार मुखर हुई है—

गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू ।
सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू ॥
रहहु करहु सब कर परितोषू ।
नतरु तात होइहि बड़ दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
रहहु तात असि नीति विचारी ।

यही कारण था कि रामके साथ अयोध्याकी प्रजा भी वनमें जाने लगी । श्रीरामने बड़ी युक्तिसे उनको वनमें जानेसे रोका । वनमें जाकर श्रीराम कोल-भील और निषादोंसे मिले, उन सबको स्नेह और समादर दिया । श्रीरामके संगसे उन सबका स्वभाव बदल गया था । भरतके साथ पुरवासियोंके आनेपर तुलसीदासजी लिखते हैं :

कोल किरात भिल्ल बनवासी ।
मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा-सो ॥
भरि-भरि परनपुटीं रचि रूरी ।
कंद मूल फल अंकुर जूरी ॥
सबहि देहिं करि विनय प्रनामा ।

जब पुरवासी लोग उन वस्तुओंका दाम देना चाहते, तब वे :

देहिं लोग बहु मोल न लेहीं ।
फेरत राम दोहाई देहीं ॥

वे कहते :

तुम सुकृती हम नीच निषादा ।
पावा दरसनु रामप्रसादा ॥
यह जिय जानि संकोचु तजि करिअ छोहु लखि नेहु ।
हमहिं कृतारथ करन लगि फल तृन अंकुर लेहु ॥

आप हमारे प्यारे पाहुन है, वनमें पधारे हैं, सेवा करने योग्य हमारे भाग्य नहीं है । भला हम आपको क्या दे सकेंगे ? किरातोंकी मित्रता इतनी ही है कि वे लकड़ी और पत्ते दे सकते हैं । हमारी सबसे बड़ी सेवा यही है कि हम आपके कपड़े और बर्तन नहीं चुरा ले जाते हैं :

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई।
लेहिं न बासन बसन चोराई॥

हमारे मनमें धर्मकी बात तो सपनेमें भी नहीं आती। यह जो कुछ आप देखते हैं, वह है :

यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ।

जबसे इन चरणोंका दर्शन किया है, तबसे हमारे सारे दोष मिट गये।

जब तें प्रभु पदपदुम निहारे।
मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥

श्रीराम समस्त जनताकी समष्टिका नाम है। वे सबके हितकी बात ही सोचते हैं और सबपर उनका प्रभाव पड़ता है। वे अपनेको लोकाराधक मानने में गौरवका अनुभव करते हैं और जनताकी प्रसन्नताके लिए स्नेह, दया, सौख्य तथा जानकीको भी त्याग देनेमें व्यथाका अनुभव नहीं करते हैं :

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

(उत्तररामचरित)

राम जब वनसे लौटकर राजसिंहासनपर आसीन हुए, तबसे उस राज्यका नक्शा ही बदल गया। तीनों लोकोंके लोग हर्षमें मग्न हो गये। किसीको थोड़ा-सा भी शोक नहीं रहा। किसीका किसीके साथ कोई वैर-विरोध नहीं रह गया। समदर्शी रामके प्रभावसे प्रजाका भी विषमभाव दूर हो गया था। सब लोग वर्णाश्रमधर्मका पालन करते थे। आजकल संसारमें जितने वैद्य-डाक्टर बढ़ते हैं, उतने ही रोग भी बढ़ते जाते हैं। किन्तु रामराज्यमें त्रिविध तापका अत्यन्ताभाव हो गया था :

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
रामराज नहिं काहुहि ब्यापा॥

आजकल झगड़े-फसाद और चोर-डकैती एवं हत्याके मुकदमोंसे कचहरियोंमें मेला-सा लगा रहता है; पर रामके राज्यमें :

सब नर करहिं परसपर प्रीता।

रामराज्यमें मृत्युसंख्या घट गयी थी। किसीको पीड़ा नहीं। सभी लोग सुन्दर और नीरोग थे। न कोई दरिद्र, न दुःखी, न दीन। मूर्ख खोजे नहीं मिलता था। अशुभ लक्षण किसीमें नहीं थे। सभी गुणज्ञ, पण्डित और ज्ञानी थे। सभी कृतज्ञ थे। कपटचातुरी कहीं नहीं दिखायी देती थी। उस समय तो :

सब उदार सब पर उपकारी।

ही थे। प्रकृति भी अनुशासित थी :

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन।
रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा।
गुंजत अलि लै चल मकरंदा॥
लता बिटप मागें मधु चवहीं।
मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥

खेती-बारीकी भी उन्नत अवस्था थी :

ससि संपन्न सदा रह धरनी।
त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी॥
सरिता सकल बहहिं बरबारी।
सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥

चन्द्रमाकी चाँदनी अमृतमयी किरणोंसे भूमिको भरपूर रखती थी। सूर्य आवश्यकतासे अधिक नहीं तपते थे और बादल मांगनेपर पानी बरसा देते थे :

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचन्द्रके राज॥

संसारके समस्त आदर्श राज्योंका सार रामराज्य है; यही जनताका मनोवाञ्छित राज्य है।

परमार्थ

यद्यपि व्यवहारमें प्रकृति और पुरुष—दृश्य और द्रष्टाके भेदसे दो प्रकारका जगत् जान पड़ता है, तथापि परमार्थदृष्टिसे देखनेपर यह सब एक अधिष्ठानस्वरूप ही है इसलिए किसीके शान्त, घोर और मूढ स्वभाव तथा उनके अनुसार कर्मोंकी न तो स्तुति करनी चाहिए और न निन्दा ही; सर्वदा अद्वैतदृष्टि रखनीचाहिए। जो पुरुष दूसरोंके स्वभाव और उनके कर्मोंकी प्रशंसा अथवा निन्दा करते हैं, वे शीघ्र ही अपने यथार्थ परमार्थ-साधनसे च्युत हो जाते हैं।

—श्रीकृष्णकी वाणी (भागवत)

प्रपत्र : चार

(नियम ८ के अन्तर्गत)

१. प्रकाशन-स्थल	:	श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ केशवदेव कटरा, मथुरा
२. प्रकाशन-आवृत्ति	:	मासिक
३. मुद्रकका नाम	:	देवधर शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
	:	मथुरा
४. प्रकाशकका नाम	:	देवधर शर्मा संयुक्त मन्त्री, श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान-सेवासंघ, मथुरा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवासंघ केशवदेव कटरा, मथुरा
५. सम्पादकका नाम	:	पाण्डेय रामनारायण दत्त शास्त्री
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	कैलगढ़ कालोनी जगतगंज, वाराणसी
६. स्वत्वाधिकार	:	श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ केशवदेव कटरा, मथुरा

मैं देवधर शर्मा, एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि ऊपर दिये गये विवरण मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार सही हैं।

देवधर शर्मा

मार्च १९७२ — संयुक्त मन्त्री, श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ

प्रकाशक

चैत्र-नवरात्रके उपलक्ष्यमें

अम्बिके, सब ओरसे रक्षा करो !

(शक्रादिस्तुति)

—अनुवादक : *श्री कमलाप्रसाद अवस्थी, 'अशोक'*—

ऋषि उवाच—

२. अतिवीर्य सुर-अरि वह दुरात्मा और उसका सैन्यदल
जब निहत देवीसे हुए, तब शक्र आदिक सुर सकल,
जो स्कन्ध-ग्रीवा नत किये थे हर्ष-पुलकित चारु तन
प्रणिपातपूर्वक कह वचन, करने लगे उनका स्तवन।

३. देवी किये जो इस जगतको आत्म-शक्त्यभिभूत हैं
निःशेष सुरगण-शक्ति-संहति जो हुईं प्रतिमूर्त हैं,
जिन अम्बिकाकी देवता-ऋषिगण सभी पूजा करें
उनको सभक्ति प्रणाम है, हमको शुभोंसे वे भरें।

४. जिनके अतुल्य प्रभाव एवं शक्तिकी गाथा महत्
हरि, हर तथा विधि हैं सुनानेमें दुर् असमर्थवत्,
होकर सकल अशुभों तथा भय आदिकोंकी खण्डिका
सम्पूर्ण जगको पालनेकी मति करें वे चण्डिका।

५. जो श्री स्वयं सुकृती घरोंमें, पापियोंके घर बसे—
होकर अलक्ष्मी, कृतधियोंमें बुद्धि जो बनकर बसे,
श्रद्धा सुजनगणमें तथा लज्जा कुलीनोंमें विदित
वह तो तुम्हीं, हे देवि, जग-पालन करो, हम हैं नमित।

६. हे देवि, तुमने सब सुरों असुरादिकोंके सामने
रणभूमिमें प्रकटित किये जो अतिचरित अपने घने,
विक्रम अमित तुममें भरित, अगणित असुर जिससे मरे
वर्णन करें हम क्या, तुम्हारा रूप चिन्तनसे परे।

७. त्रिगुणा तथापि अदोष हो सम्पूर्ण जगकी कारिणी,
तुम हरि-हरादिकके लिए भी हो अनधिगत-रूपिणी,
सब जग तुम्हारा अंश यह, सबकी बनीं आश्रय तुम्हीं
आद्या तथा अव्याकृता, परमा प्रकृति निश्चय तुम्हीं।

८. जिसकी किये समुदीरणा हैं तृप्ति पाते सब अमर
हे देवि, वह स्वाहा तुम्हीं हो सर्वयज्ञोंमें प्रवर,
श्राद्धादिमें त्योंही पितरजनके लिए तृप्तिप्रदा
इससे कही जातीं स्वधा तुम सब जनोंसे सर्वदा।

९. तत्त्वानुशीलन-रत जितेन्द्रिय विगत दोषोंसे बना—
मुनिवर्ग मोक्षार्थी करे जिसकी निरन्तर साधना,
अविचिन्त्य और महाव्रता जो मुक्तिका कारण कथित
हे देवि, वह हो भगवती विद्या तुम्हीं परमा विदित।
१०. उद्गीथ एवं रम्यपद पाठान्विता, शब्दात्मिका,
सुविमल यजुर्, ऋक्, साम वेदोंकी बनीं आधारिका,
देवीत्रयी तुम भगवती वार्ता तुम्हीं भव-भाविनी
सारे जगत्‌की हो तथा परमार्तियोंकी नाशिनी।
११. तुम ज्ञानदात्री सर्वशास्त्रोंकी, अतः मेधा विदित
दुर्गम भवाब्धि-निमित्त नौका हो, अतः दुर्गा कथित,
तुम हो असङ्गा, कैटभारि-हृदय बसीं श्री अभिहिता
हे देवि, गौरी हो तुम्हीं, शशिमौलिसे सम्मानिता।
१२. मुसकानमय आनन अमल परिपूर्ण शशिके बिम्बवत्
उत्तम कनककी कान्तिसे जो कान्त रहता है सतत,
आश्चर्य है, वह वक्त्र महिषासुर तथापि विलोक कर
आघात कर बैठा अचानक था बहुत ही रोष भर।
१३. हे देवि, छवि अवलोक कर भृकुटी-कराल-कुपित बनी
जो थी उदित होते शशाङ्क समान शोभासे सनी,
त्यागा महिषने प्राण जो न तुरन्त, बात विचित्रतर
कोई भला क्या जो सके, अन्तक सकोप विलोक कर?
१४. भवके हितार्थ प्रसन्न होओ देवि परमा, इसलिए
जिनपर कुपित हों, शीघ्र उनके नष्ट तुमने कुल किये,
अतिशय विपुल महिषासुरी बलका समापन जो हुआ
उस काण्डसे विज्ञात अब यह तथ्य है हमको हुआ।
१५. वे जनपदोंमें हों प्रतिष्ठित और वे ही हों धनी
धर्मादिवर्ग न क्षीण होते कीर्ति उनकी हो बनी,
वे धन्य, हों न विषण्ण दारा पुत्र भृत्योंसे कदा
जिनपर प्रसन्न हुईं उन्हें तुम अभ्युदय देतीं सदा।
१६. पाकर तुम्हारी ही कृपा सुकृती परम श्रद्धाभरे—
प्रतिदिन सकल धर्मानुमोदित कृत्य सम्पादित करे,
एवं त्वदीय प्रसादसे वह स्वर्गको जाता ततः
त्रैलोक्यमें फलदायिनी, हे देवि, हो निश्चय अतः।
१७. दुर्गे, स्मरणसे प्राणियोंके भय अमित करतीं हरण
मतिदान करतीं अतिशुभा यदि स्वस्थजन करते स्मरण,

हे दुःख-भय-दारिद्र्यहारिणि, कौन तुम-सा अन्य है
सर्वोपकारक चित्त जिसका यों दया-पर्जन्य है ?

१८. इनके निधनसे हो सके सुखकी जगतमें स्थापना
ये भी न करके पाप, पायें चिर नरककी यातना,
रणमें मरणसे प्राप्त कर लें दिव-गमन अधिकार ये
हे देवि, मारे शत्रु निश्चय ही भरे सुविचार ये।

१९. क्यों सब असुर भस्म न किये, निजदृष्टिके निक्षेपसे
मारा इसीसे शत्रुओंको शस्त्रके विक्षेपसे—
रिपु भी कि मेरे शस्त्रसे पावन बनें, पायें सुगति
इस भाँतिकी उनके लिए भी मति तुम्हारी साधु अति।

२०. जो उग्र खड्ग-प्रभानिकर शूलाग्रसे त्यों विस्फुरित
अतिकान्तिमें भी हो न पाये थे असुर लोचन-रहित,
इसका यही कारण कि उनकी दृष्टि थी तुमपर लगी
आनन तुम्हारा इन्दुवत् है, कान्ति है जिसमें जगी।

२१. दुर्वृत्तजनकी वृत्तियोंका शील तव प्रशमन करे
त्योंही तुम्हारा रूप चिन्तन और तुलनासे परे,
तव वीर्यसे सुरमर्दकोंका नाश निश्चित हो गया
यों देवि, तुमने वैरियोंपर भी प्रकट की है दया।

२२. उपमा तुम्हारे इस पराक्रमकी कहीं मिलती नहीं
क्या है मनोहर रूप ऐसा शत्रुभयकारी कहीं ?
तीनों भुवनमें देवि वरदे, बस तुम्हीं दिखतीं हमें
यों चित्त जिनका हो कृपामय और निष्ठुर युद्धमें।

२३. तुमने अखिल त्रैलोक्य यह रक्षित किया रिपुनाश कर
वे शत्रुगण भी स्वर्गगामी हो गये रणमध्य मर,
यों भय हमारा मिट गया उन्मद असुरकुल-संजनित
इस हेतु हम सब हो रहे सम्मुख तुम्हारे अब नमित।

२४. रक्षा हमारी शूल एवं खड्गसे हो देवि हे,
घण्टा-रणन टंकारसे भी रक्ष हमको अम्बिके!
हे चण्डिके, प्राची, प्रतीची, दक्षिणोत्तरमें तथा,
ईश्वरि, घुमाकर शूल निज रक्षा करो तुम सर्वथा।

२५. त्रैलोक्यमें तवरूप विचरित सौम्य या अतिघोर जो,
उनसे हमारी और इस भूलोककी रक्षा करो।
तव पाणि-पल्लव अस्त्रशोभित खड्गशूल-गदादि जो,
उनसे हमारी, अम्बिके, सब ओरसे रक्षा करो।

मिनख मजूरी देत है, क्या राखेलो राम ?

श्री प्रह्लाद राय व्यास, 'साहित्यसुधाकर'

★

एक था राजा। उसके एक बेटी थी। वह भगवान्‌की परम भक्त थी। जब वह बड़ी हो गयी तो राजाने सोचा—राजकुमारीका विवाह किसी ऐसे आदमीसे करें, जो भगवान्‌का परमभक्त हो। राजकुमारीसे विवाह करने कई राजकुमार आये और उसे खूब सुख ओर आनन्द देनेके वचन देने लगे, लेकिन उसने सबसे एक ही बात कही: 'आप कुछ भी देने योग्य नहीं। भगवान् ही सबको देता है। उसकी मर्जीके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। आपका विश्वास भगवान्‌में नहीं है। मैं तो ऐसे आदमीसे विवाह करूँगी, जिसका भगवान्‌में पक्का भरोसा हो।'

आखिर एक दिन एक साधु आया और उसने राजकुमारीसे विवाह करनेके लिए राजासे कहा। राजाने राजकुमारीसे उसका विवाह कर दिया। साधुके पास कुछ भी नहीं था, न रहनेको झोपड़ी और न खाने-पीनेको अन्न। वह भीख माँगता और पेट भरता। राजाने विवाह करके राजकुमारीको विदाई दे दी। राजकुमारी उसके पीछे हो ली।

चलते-चलते दोनोंको शाम हो गयी। साधुने राजकुमारीको एक मन्दिरके बाहर बिठा दिया और बस्तीमें भीख माँगने चला गया। भीख माँगकर वह रोटियाँ ले आया। राजकुमारी और साधुने रोटियाँ खा लीं। खा लेनेके बाद उस साधुके पास दो रोटियाँ बच गयीं। वह उन रोटियोंको अपनी धोतीके पल्लेमें बाँधने लगा तो राजकुमारीने पूछा: 'यह क्या करते हैं आप? रोटियोंको क्यों बाँधे जा रहे हैं?' 'कल सुबह खानेके लिए। यदि भीख माँगनेपर भी कहीं रोटियाँ न मिलीं तो पेट कैसे भरेगा?'—साधुने उत्तर दिया। "तब तो आपको भगवान्‌पर भरोसा नहीं और भगवान्‌का भजन नित किया करते हैं! मैं तो धोखेमें आ गयी और आपसे विवाह करके पछतायी। 'मिनख मजूरी देत है, क्या राखेलो राम?' किसी आदमीकी नौकरी करनेपर वह भी मजदूरी देता है, तो भला भगवान् क्या आपको कल खानेको नहीं देगा?" राजकुमारीकी इस बातने साधुकी आँखें खोल दीं। उसने उससे क्षमा माँगी और बची रोटियाँ गायको खिला दीं। दोनों मन्दिरके दरवाजेपर ही सो गये।

सुबह चार बजे उठकर राजकुमारीने अपने पतिको जगाया और उसे अपने हाथों नहला-धुला और खुद भी नहा-धोकर उसी मन्दिरके दरवाजेपर भगवान्‌का भजन करने बिठा दिया। भजन करनेके बाद दोनों ही एक नगरीकी ओर चल पड़े। जब वे उस नगरीमें पहुँचे तो सामने एक हथिनी सूँडमें माला लिये मिली। हथिनीने साधुके गलेमें वह माला डाली

और दोनोंको अपने ऊपर बिठाकर एक महलमें ले गयी। उस नगरीका राजा मर गया था। उसके कोई बेटा नहीं था, इसलिए लोगोंने तय किया कि हथिनी जिसके गलेमें माला डालकर अपने ऊपर बिठाकर ले आयेगी, उसीको राजा बना दिया जायगा। हथिनीके वहाँ पहुँचते ही साधुको वहाँका राजा बना दिया गया। राजतिलक होनेके बाद मरे राजाको जलाने ले गये।

एक दिनके भगवान्‌पर पक्के भरोसेके फलस्वरूप साधु भिखारीसे राजा बन गया। जब वह राजकुमारीके साथ अपने महलमें पहुँचा तो राजकुमारीने हँसते हुए कहा :

सांई टेढ़ी आँखियाँ वैरी खलक तमाम।
टुकेक झेलो महरको लाखों करे सलाम॥

अर्थात् भगवान्‌की जरा-सी दयाकी नजर मानवपर हो जाय तो सारा संसार उसको झुक-झुककर नमस्कार करता है। यदि भगवान्‌की नजर मानवपर टेढ़ी हो जाती है तो सारे लोग उस आदमीके शत्रु बन जाते हैं।

रघुवीर राम !

एक नहीं दस्यु दशमुख हैं अनेक बढ़े
जिनसे वसुंधरामें व्याप्त हुई शंका है
डगर-डगरमें अनीति-असुरोंकी अनी
नगर-नगरमें सुवर्णमयी लंका है।
सीता-सी असंख्य सतियोंका है हरण होता
जनस्थान बीच डाकुओंका बजा डंका है
आज इन्हें बोलो भरताग्रज भगाये कौन
रघुवीर तुम-सा न कोई वीर बंका है।
खर खलताका दोष दूषण त्रितापमय-
त्रिशिरा सुमति-सरितामें आज बह जायँ।
मारो ज्ञान-बान राम काममय रावणकी
क्रोध कुम्भकर्णकी न सत्ता शेष रह जाय।
भेजो कपि-कटक विवेकसे गठित शीघ्र
लोभमयी लंकाका दुरूह दुर्ग ढह जाय।
परम पुनीता सुख-शान्तिमयी सीता फिर
लौट आये भारतमें, कटुता कलह जाय॥

—श्री 'राम'

उपदेशपर उपदेश

श्री वियोगी हरि

★

वह खड़ा था चौकन्ना उस सूनसान कोनेमें न जाने कबसे ! कभी इधरको देखता, कभी उधरको तो कभी आसमानकी तरफ। काफी परेशान था। लगता था, जैसे बहुत दिनोंसे कुछ न कुछ सुन रहा हो—नया भी सुन रहा हो और कुछ पुराना भी। कान खोल रखे हैं उसने, फिर भी और-और सुननेको कि अब देखना है—कहाँसे, किधरसे कोई सलाह, कोई सन्देश या उपदेश उसके लिए आनेवाला है। उसके चेहरेपर किसी क्षण तो गहरी, किसी क्षण उथली रेखाएँ उभर आतीं। कभी मुस्कुरा देता तो कभी ऊब उठता या विरागका भाव प्रकट करने लगता। मौके-बेमौके दी गयी सलाहों और उपदेशोंका भारी अंबार उसके सामने लगा हुआ था। परेशान होकर वहाँसे भाग जाना चाहता था वह, पर मुश्किल था।

प्राचीनोंने भी मन्त्रणाएँ और उपदेश दिये थे : समय-समयपर और स्थान-स्थानपर बहुतोंको। उन बहुजनोंमें होते थे जिज्ञासु, वाद-विवादोंमें खूब दिलचस्पी लेनेवाले तो कितने ही समझदार और नासमझ श्रोता तथा अनुयायी भी। उस कालके वे उपदेशक दूसरोंको मन्त्रणा और उपदेश देनेका अधिकार पानेके लिए कठिन साधना और तप किया करते थे। कोई-कोई शासक भी होते थे आत्मानुशासनके बदौलत। समाज और राज्यपर उनका अंकुश होता। जिज्ञासु व्यक्ति और प्रजाजन उनके सम्यक् उपदेश सुनने और उनपर मनन एवं तदनुसार आचरण करनेको तत्पर रहते। क्योंकि आकर्षक उपदेश उनकी जीवन-साधनाका निचोड़ होता।

जो सामान्यजन वहाँ अकेला, परेशान-सा खड़ा था, उसके ऊपर रोज-रोज सलाहों, उपदेशों और प्रवचनोंकी बौछारें पड़ रही थीं। वह हैरान था कि अनचाहे और अनमाँगे ही ढेर-का-ढेर उसके दिमागमें यह क्या-क्या ठूँसा जा रहा है !

वह पहलेसे ही सादा और सच्चा जीवन जी रहा था। फिर भी हर रोज उसे सादगी और सचाई अपनानेकी सलाहें दी जाती थीं। ऐसी सलाहें वे देते थे, जो कहीं अधिक समृद्ध थे और थे उच्च पदोंपर आसीन।

उसके सामने ऐसे धर्म-गुरु खड़े थे, जो चन्द दिनोंमें आत्मदर्शन करा देनेका दावा रखते थे। उन गुरुओंके पीछे हजारोंकी भीड़ रहती थी, जिनमें अधिकांश लोग सम्पदा और

प्रभुतासे सम्पन्न थे। उनका विश्वास था कि जीवनभर उन्होंने जो पाप कमाया, वह सारा योंही माफ हो जायगा और परलोकका प्रवेश-पत्र उन पुराने और नये-नये धर्मगुरुओंके चमत्कारी उपदेशोंसे उनको अनायास मिल जायगा।

ऐसोंका भी उपदेश सुननेको उसे मिला, जिनके दुर्बल कन्धोंपर समाज-सेवाका भारी भार रखा हुआ था। उनके उपदेशोंमें नये-से-नये समाजके निर्माणकी बात रहती थी। पुराना उनको कुछ भी पसन्द नहीं था, सब नया-ही-नया देखना और दिखाना चाहते थे वे। वे सारा ही पुराना तोड़-फोड़ देना चाहते, फिर भी पुराना उनके हाथको प्यारसे पकड़े या जकड़े हुए था। यह फर्क समझना कठिन था कि सेवा वे समाजकी करते थे या स्वयं अपनी। उनकी दी हुई सीख और सलाह उस सामान्यजनके अन्तरमें ठहर नहीं पा रही थी, जैसे तेलपर पड़ी हुई पानीकी बूँद। समाजके उद्धारक नाराज थे कि उनके उपदेशोंपर वह क्यों कान नहीं दे रहा है और उनपर क्यों नहीं चल रहा है?

उधर, राजनेताओं और शासकों द्वारा दिये गये तरह-तरहके उपदेश और प्रवचन सुन-सुनकर भी उसकी परेशानीका कुछ पार नहीं था। सम्राट् अशोक और शुरू-शुरूके खलीफाओंके बारेमें उसने सुन रखा था कि राज्य-शासकके साथ-साथ वे धर्म-शासक भी थे। पर उसके सामने जो शासक आते थे, उनके साथ वैसे प्राचीनोंका मेल नहीं बैठ रहा था। हर मौकेपर और हर बातपर उन शासकोंके, जो उसके सामने उपस्थित थे, उपदेश होते ही रहते थे। सुननेवाला जन-समूह उनके समक्ष जैसे निरा अनजान और अबोध था, यद्यपि उसमें कई अच्छे मेधावी, वैज्ञानिक और कलाकार भी होते थे। उन्होंने मान लिया था कि उनके उपदेश बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे सुने जाते हैं।

मगर सामान्यजन कहाँतक धैर्यपूर्वक सुनता रहे कि 'ऐसा या वैसा नहीं करना चाहिए' और 'यह और वह करना ही चाहिए?' वे सांख्यके मुकाबले कभी-कभी गुणपर जोर देते थे। किन्तु व्यवहारमें सांख्य-बलपर ही उनका आधार रहता था।

वे हमेशा अनुशासनपर दृढ़ रहनेका उपदेश दिया करते थे। किन्तु जब वे स्वयं ही अनुशासन भंग करते, तब कहा जाता था कि ऐसा उन्होंने अपनी 'अन्तरात्माकी पुकार' या 'आवाज' पर किया है। सामान्यजन तब स्तब्ध रह जाता—आत्म-प्रवंचनाके बचावकी ऐसी-ऐसी लचर दलीलें सुनकर। सो, उसकी श्रद्धा उठ गयी हर रोज उपदेश देनेवाले उन राज-नेताओं और शासकों परसे।

सहसा चौंक पड़ा वह, जैसे कुछ अद्भुत देखा हो या उसे वैसा लगा हो। अब वह परेशान नहीं था। इस परिणामपर पहुंच गया था कि उन सारे उपदेशोंका वह सारा इन्द्रजाल था। नाहक उसमें फँस गया था वह। उसे उसकी अपनी झूठी श्रद्धाने धोखा दिया था। अब वह किसीका भी उपदेश नहीं सुनेगा, किसीकी भी सलाहोंपर नहीं चलेगा। वह सच्चा जिज्ञासु है, तो सभी प्रश्नोंके यथार्थ उत्तर उसके अन्तरसे ही मिलेंगे, कहीं बाहरसे नहीं।

●

क्या सीताजीने मद्य-मांससे गंगाजीकी मनौती मानी ?

श्री जयदयालजी डालमिया

★

मदिरा-सेवनके पक्षपाती यह आक्षेप किया करते हैं कि श्री सीताजीने भी गंगामैय्याकी मदिरा द्वारा पूजाकी मनौती मानी थी। बात यह है कि भगवान् श्रीराम जब सीताजीके साथ पिताकी आज्ञासे वनके लिए चल पड़े तो बीचमें गंगा पार करनी पड़ी। उस समय सीताजीने गंगाजीसे अपने प्राणनाथके सकुशल लौटनेकी जो मनौती मानी थी। वाल्मीकीय-रामायणके अनुसार वह इस प्रकार है :

सा त्वां देवि नमस्यामि प्रशंसामि च शोभने।
प्राप्तराज्ये नरव्याघ्रे शिवेन पुनरागते॥

अर्थात् शोभाशालिनी देवी! पुरुषसिंह श्रीराम जब पुनः वनसे सकुशल लौटकर अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे, तब मैं सीता पुनः आपको मस्तक झुकाऊँगी और आपकी स्तुति करूँगी।

गवां शतसहस्रं च वस्त्राण्यन्नं च पेशलम्।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदास्यामि तव प्रियचिकीर्षया॥

इतना ही नहीं, मैं आपका प्रिय करनेकी इच्छासे ब्राह्मणोंको एक लाख गायें, बहुत-से वस्त्र तथा उत्तमोत्तम अन्न प्रदान करूँगी।

ये दोनों श्लोक वाल्मीकीय-रामायणके प्रचलित संस्करणोंमें अयोध्याकाण्डके ५२वें सर्गमें ८७ और ८८ संख्याके हैं, जब कि ओरिएण्टल इंस्टीटयूट, बड़ौदाके वाल्मीकीय-रामायणके तुलनात्मक संस्करण (Critical edition) में अयोध्याकाण्डके ४६वें सर्गके ७२-७३ संख्याके हैं।

साधारण संस्करणोंमें इसके पश्चात् तीन श्लोक और हैं जो बड़ौदा-संस्करणमें नहीं हैं : बड़ौदाका यह संस्करण शारदा (काश्मीरी), नेवारी (नेपाली), बंगाली, देवनागरी, तेलुगु, (ग्रन्थ) और मलयालम् लिपियोंकी ४३ पाण्डुलिपियोंसे मिलाकर सम्पादित, प्रकाशित है। अपनी गवेषणाके फलस्वरूप बड़ौदावालोंने ये तीन श्लोक क्षेपक माने हैं। केवल पाँच पाण्डुलिपियोंमें मिलते हैं। इन तीनों श्लोकोंमें पहला श्लोक है :

सुराघटसहस्रेण मांसभूतौदनेन च।
यक्ष्ये त्वां प्रीयतां देवि पुरीं पुनरुपागता॥

इसका साधारण लोग यही अर्थ करते हैं : 'पुनः अयोध्यापुरी लौटनेपर मैं सहस्र घट सुरा और मांसभूत ओदन द्वारा आपकी पूजा करूँगी। देवि! आप प्रसन्न होइये।'

इसी आधारपर उपर्युक्त आक्षेप किये जाते हैं। लेकिन इसे क्षेपक न मानें, तो भी इस श्लोकका विचारपूर्वक अर्थ करनेपर वह आक्षेप ठहर नहीं पाता। यहाँ 'सुरा' और 'मांसभूत ओदन' शब्द विचारणीय हैं।

साधारण लोग 'सुरा'का अर्थ मदिरा ही समझते हैं। किन्तु निघण्टुमें 'उदक'के पर्यायवाची शब्दोंमें सुरा और क्षीर भी मिलते शब्द हैं।[1]

मोनियर-विलियमके संस्कृत-अंग्रेजी कोषमें सुराका अर्थ इस प्रकार है :

Spiritous liquor, wine (in ancient times 'a kind of beer');

Spiritous liquor (personified as a daughter of Varuna produced at the churning of the ocean);

water; a drinking vessel; snake; etc.

इन्होंने भी सुराका अर्थ जल (उदक) स्वीकार किया है, जिसका पर्यायवाची क्षीर-शब्द भी है। 'क्षीर' दुग्धको भी कहते हैं। अतः सुरा और क्षीर पर्यायवाची शब्द होनेपर यहाँ सुराका अर्थ यदि क्षीर (दुग्ध) किया जाय तो क्या आपत्ति हो सकती है?

गंगाजीकी पूजामें दूध चढ़ानेका विधान और प्रथा भी यही देखनेमें आती है। इसके पूर्व सीताजी ब्राह्मणोंको एक लाख गौएँ देनेकी मनौती भी करती हैं। ब्राह्मणोंको एक लाख गो-दान एवं गंगाजीको सहस्रघट गोदुग्ध देनेकी बातका मिलान भी खाता है। अतः सीताजी द्वारा यदि सहस्रघट दूध द्वारा पूजा करनेकी मनौती की गयी हो तो यह बात ठीक समझमें आती है। मदिरा द्वारा न तो कहीं गंगाजीकी पूजाका विधान है और न प्रथा। ऐसी हालतमें यहाँ सुराका अर्थ दूध ही उपयुक्त है, मदिरा नहीं।

अब 'मांसभूत ओदन'पर विचार करें। 'मांस'का अर्थ मोनियर विलियमके संस्कृत-अंग्रेजी कोष एवं अन्य कोषोंने भी फलादिके गूदेदार मुलायम भाग भी माना है। सीताजीने ब्राह्मणोंको एक लाख गायें देनेके साथ उत्तमोत्तम अन्न देनेकी बात भी कही है। उत्तमोत्तम अन्न मिष्टान्न ही होते हैं। अतः गंगाजीके लिए मिष्ट ओदनकी बात कहना युक्तिसंगत है। मिष्ट-ओदनमें घी, मेवा, दूधका खोआ आदि मिलाये जाते हैं। यहाँ मांसका अर्थ सूखे फल (मेवे) आदिका तथा दूधका खोआ आदि होना अधिक युक्तिसंगत है।

सीताजी गंगाजीसे मनौती मानती हैं कि श्रीरामके सकुशल लौटनेपर वे ब्राह्मणोंको एक लाख गौएँ, वस्त्र और उत्तम अन्न देंगी तथा गंगाजीकी सहस्रघट दुग्ध एवं मेवे और खोएसे मिश्रित-मिष्ट ओदन द्वारा पूजा करेंगी।

इस प्रकार प्रस्तुत विवादास्पद श्लोकके दो समाधान सुस्पष्ट है। एक तो यह क्षेपक श्लोक है। दूसरे क्षेपक न भी मानें तो भी 'सुरा' और 'मांसौदन'के आपाततः लिये

---

१. द्रष्टव्य : निघण्टु और निरुक्त : सम्पादक, डॉ० लक्ष्मणस्वरूप, प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्रथम अध्याय, पृ० ४, संस्करण द्वितीय, १९६७।

जानेवाले अर्थ यहाँ मेल नहीं खाते। अतः कोष-प्रामाण्यसे उनके अर्थ क्रमशः दूध और मीठा भात ही प्रकरण-संगत होते हैं। ऐसी स्थितिमें गीताप्रेसके वाल्मीकीय-रामायणमें की गयी अर्थकी खींचातानीकी भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

वाल्मीकीय-रामायणके गीताप्रेस-संस्करण (अयोध्याकाण्ड, सर्ग ५२, श्लोक-संख्या८९) में प्रस्तुत श्लोक उसका अर्थ एवं टिप्पणी इस प्रकार है :

'सुराघटसहस्रेण मांसभूतौदनेन च।
यक्ष्ये त्वां प्रीयतां देवि पुरीं पुनरुपागता ॥८९॥

देवि ! पुनः अयोध्यापुरीमें लौटनेपरमें सहस्रों देवदुर्लभ पदार्थोंसे तथा राजकीय भागसे रहित पृथ्वी, वस्त्र और अन्नके द्वारा भी आपकी पूजा करूँगी। आप मुझपर प्रसन्न हों[1] ॥ ८९॥

---

१. इस श्लोकमें आये हुए 'सुराघटसहस्रेण'की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'सुरेषु देवेषु न घटन्ते न सन्तीत्यर्थः, तेषां सहस्रं तेन सहस्रसंख्याकसुरदुर्लभपदार्थैनेत्यर्थः।' 'मांसभूतौदनेन' की व्युत्पत्ति इस प्रकार समझनी चाहिए—'मांसभूतौदनेन, मा नास्ति अंसो राजभागो यस्यां सा एव भूः = पृथ्वी च उतं वस्त्रं च ओदनं च एतेषां समाहारः, तेन च त्वां यक्ष्ये।''

यों तो यह व्युत्पत्ति ठीक समझी जा सकती है, लेकिन राजकीय भागसे रहित अर्थात् कररहित पृथ्वीसे गंगाकी पूजाकी बात समझमें कम आती है। ब्राह्मणोंको राजकीय भागसे रहित पृथ्वी देना तो सम्भव हो सकता है, लेकिन गंगाजीकी पूजामें इसका प्रयोग कैसे होगा, समझमें नहीं आता। यदि यह बात इसके पूर्ववाले श्लोकमें होती, जहाँ ब्राह्मणोंको एक लाख गौएँ, बहुत-से वस्त्र तथा उत्तमोत्तम अन्न देनेकी बात कही गयी है, तो खपता। ऐसी स्थितिमें हमारा उपर्युक्त समाधान ही प्रमाण एवं युक्तिसे अनुगृहीत ठहरता है।

●

मैं सुनता हूँ, तू गाता जा !

१. भैरव-रागसे भव-भीति भगा, भैरवी सुनाकर मोहित कर।
मत दे बिहागकी ओर ध्यान, दे छेड़ मेघके भीषण स्वर।
उत्तप्त उर्वरा कर शीतल, वसुधाको सुधा पिलाता जा॥

२. क्यों पड़ी बीन यह मौन अरे, ले उठा छेड़ दे तार-तार।
तू एकबार जो भी गा दे, दुहरायें उसको बार-बार।
मिजराब लगाकर तारोंपर तू अपनी मींड लगाता जा॥

३. हो एक राग तेरे मुखका झरनोंका स्वर-साधन महान्।
कोकिल तुझसे ही सीख सके, मृदु मनोहारिणी मधुर तान।
वरदान-सदृश अनुपम अपनी, कृति संसृतिमें बिखराता जा॥
मैं सुनता हूँ, तू गाता जा !

—श्री सत्यनारायण द्विवेदी

भूतदयाके अवतार : सन्त एकनाथ

श्री कृष्णगोपाल माथुर

☆

अभी-अभी चैत्रकृष्ण षष्ठीको सन्त एकनाथ महाराजकी पुण्यतिथि महाराष्ट्रमें सोत्साह मनायी गयी। आचार्य विनोबाजी लिखते हैं कि "जन ही जनार्दन' और 'जनसेवा ही ईश्वर-सेवा' यह सन्त एकनाथकी विशेषता है। वे कहते हैं : 'सहज कर्म ब्रह्मार्पण हो गये। यह जन नहीं, जनार्दन ही है।' नाथ महाराजका जीवन मानवीय-जीवन था तो हमारा जीवन पशु-जीवन। हमारे चित्तपर यह अङ्कित करनेके लिए ही प्रतिवर्ष सत्पुरुषोंकी पुण्यतिथियाँ आतीं और हमें जगाती हैं। वे हमसे कहती हैं : 'ऐसा सीधा, सरल मानवजीवन तुम भी जीने लगो और हमारी आवश्यकता ही मिटा दो।"

पंढरपुरमें श्री विट्ठल भगवान्‌के अनन्य भक्त भानुदासके पुत्र चक्रपाणिके आत्मज श्री सूर्यनारायणके घर सं० १५९० ई० में भक्तराज एकनाथका जन्म हुआ। परम मेधावी पिता सूर्यनारायण और पतिव्रता माता रुक्मिणीका देहान्त हो जानेके बाद इनका लालन-पालन पितामह चक्रपाणिने किया।

एकनाथकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। बारह वर्षकी अवस्थामें पुराणादि ग्रन्थोंमें पारंगत हो जानेके पश्चात् वे भगवान्‌से मिला देनेवाले गुरुकी खोजमें व्याकुल हो उठे। कहते हैं, आकाशवाणी सुनकर वे देवगढ़ गये और वहाँ सुप्रसिद्ध भक्त सूबेदार जनार्दन पन्तके दर्शनकर उन्हें गुरुरूपमें वरण किया। यह विक्रम संवत् १६०२ की बात है। शिष्यकी असाधारण बुद्धि देखकर गुरुने उससे भागवतके एकादश-स्कन्धकी मराठी टीका (एकनाथी भागवत) पैठण स्थानमें लिखवाना शुरू किया, जो आज भी बड़े-बड़े पण्डितोंमें मान्य ग्रन्थ गिना जाता है। २५ वर्षकी आयु होनेतक एकनाथने बहुत-से ग्रन्थ लिख डाले। उन ग्रन्थोंमें अद्वैतज्ञान और भगवद्भक्तिका बड़ा सुन्दर मेल देखनेको मिलता है। सुप्रसिद्ध संत तुकारामने ज्ञानेश्वरकी ज्ञानेश्वरी और 'एकनाथके 'भावार्थ रामायण' और 'भागवत'के कई पारायण करके तत्त्व-ज्ञान प्राप्तकर लिया था।

एकनाथ अनेक कठिनाइयाँ झेलते हुए बड़ी श्रद्धाके साथ ६ वर्षतक गुरुकी सेवा करते रहे। एकबार गुरुजीके सौंपे हिसाबमें एक पाईका अन्तर तीन पहरतक हिसाब जाँचते-

जाँचते जब इन्हें मिला, तो हर्षातिरेकसे इन्होंने ताली बजायी। गुरुजी सारा हाल जानकर बोले : 'इसी प्रकार भगवद्भजन-विहीन अपना जीवन व्यतीत होनेकी भूल तुम्हें मालूम हो जाय, तो तुम कितने प्रसन्न होगे ? चिन्तन करो तो भगवान् दूर नहीं हैं।'

यह वाक्य आशीर्वाद जानकर एकनाथने कृतज्ञतासे गुरुचरणोंमें मस्तक रख दिया। इसके पश्चात् हरिभजनसे प्रसन्न हो श्रीदत्तात्रेय भगवान् इन्हें गुरुके रूपमें दर्शन देने लगे।

एकनाथजी गुरुकी आज्ञासे शूलभंजन पर्वतपर जाकर श्रीकृष्ण-मंत्रका जप करते हुए तपस्या करने लगे। फिर सन्त-समागम, तीर्थयात्रा, भागवतधर्मका प्रचार, चतुःश्लोकी भागवतपर ओवी छन्दमें ग्रन्थका निर्माण—ये सब कार्य गुरु-आज्ञासे करते हुए एकनाथ अपनी जन्मभूमि पैठणमें लौट आये। यहाँ गिरिजाबाईके साथ इनका विवाह सम्पन्न हुआ, जो बड़ी पतिपरायणा थीं।

गार्हस्थ्य-जीवनमें भी एकनाथजीका सदाचारपूर्वक भगवत्सेवार्चन, पूजा-पाठ, पुराणोंका अध्ययन-मनन नित्य चलता रहता। वे रात्रिमें केवल ४ घण्टे शयन करते।

इनके यहाँ सबको अन्न-वितरण किया जाता था। हरिकीर्तन एवम् ज्ञानदानका प्रवाह भी निरन्तर चालू रहता। क्षमा, शान्ति, समता, सर्वभूतहितेरतत्व, निस्संगता, प्रेम आदि दैवी गुणोंके निधान सन्त एकनाथकी महिमा प्रभुकृपासे यहाँतक बढ़ गयी कि इनके दर्शन करनेसे ही अनेक नर-नारियोंके पाप-ताप एवं सांसारिक दुःख-दारिद्रय दूर हो जाते थे। इनका जीवन बद्धोंको मुक्त करने और मुक्तोंको पराभक्ति या परमानन्दकी प्राप्ति करानेके लिए ही हुआ था, ऐसी अनेक घटनाएँ सामने आयी हैं।

सन्त एकनाथ गीताके शब्दोंमें सच्चे अर्थमें **सर्वभूतहिते रताः**, शान्तिके सागर और दयाके अखण्ड स्रोत थे। उनकी अनेकानेक घटनाएँ इसकी साक्षी हैं। गोदावरीसे स्नानकर आते समय एक यवनने १०८ बार उनपर कुल्ले किये और नाथ हरबार नहाकर आये, पर सिरपर तनिक शिकन तक नहीं।

काशीसे गङ्गाजल लेकर रामेश्वरको चढ़ानेके लिए ले जाते हुए प्यासे गधेको वह सारा जल पिला देनेकी उनकी कहानी सुप्रसिद्ध है। उन्होंने पिताके श्राद्धके लिए बनायी रसोई भूखे कहारको खिला दी और पुनः नवीन रसोई बनाकर श्राद्ध किया। पैठनकी एक विरक्ता और अपनी पतिततासे क्षुब्धा वेश्याकी प्रार्थनापर वे उसके घर गये और 'रामकृष्णहरि' मन्त्रसे दीक्षितकर उसका उद्धार किया।

कोई भी भूखा-प्यासा, चाहे वह ब्राह्मण हो, भिखारी हो, बटोही हो, जब एकनाथ महाराज देख लेते तो उसे भोजनादि कराकर तृप्त कर देते। महाकवि मोरोपन्तने इन्हें 'लक्ष-विप्रभोजक' की उपाधिसे विभूषित किया था। लोगोंको अन्नादिसे तृप्त करनेमें एकबार यहाँ-तक हुआ कि अभ्यागतोंके लिए भोजन बनानेके निमित्त घरमें जलानेको लकड़ी नहीं थी, तो सन्तने अपनी खटिया खोलकर चूल्हेमें लगा दी। किसी प्रकार अन्नादिका प्रबन्ध करके अतिथिको भोजनसे तृप्त करके ही जाने देना एकनाथ महाराजका पक्का नेम था। घरमें चोर घुस आनेपर घरकी सारी वस्तुएँ उन्हें प्रसन्नतापूर्वक दे देना और ऊपरसे शरीरके वस्त्र, अँगूठी

उतारकर उन्हें सौंप देना और पूछना कि 'क्या मैं आपको साथ चलकर पहुँचा आऊँ ?' ऐसी-ऐसी सैकड़ों घटनाएँ सन्त एकनाथ महाराजके जीवनमें भरी पड़ी हैं।

गृहस्थ बनकर भी एकनाथकी धार्मिक दिनचर्या प्रातःकालसे लगाकर आधी रात्रिके बादतक चलतीं। उसमें धर्मग्रन्थोंका अध्ययन–मनन, भगवत्-स्वरूपोंकी सेवा, भजन-कीर्तन, सदुपदेश मुख्यरूपसे होते थे। एकबार ये आकटी स्थानपर महीनों तक रहकर हरिकथा सुनाते रहे। भूतदयाके तो मानो अवतार ही थे। उन्होंने अपने उपदेशोंमें समझाया है :

"कीड़ी-कुंजरसे लगाकर समस्त चैतन्य प्राणी सेवाके पात्र हैं और इनकी सेवा तन, मन, धन एवम् निस्वार्थभावसे करनी चाहिए। किसी भी जीवको यदि कष्ट हो रहा हो तो अपनी असुविधा, हानि अथवा कठिनाईका ध्यान न रखते हुए उसका कष्ट येनकेन प्रकारेण गिरा देना चाहिए। इसीमें भगवत्सेवा समायी हुई है। भगवान्‌के बनकर यदि भगवान्‌को प्रसन्न करना है, तो ये काम करने ही होंगे। एकत्वके साथ सृष्टिको देखनेसे दृष्टिमें भगवान् भर जाते हैं। वहाँ द्वैतकी भावना रहती ही नहीं। ध्यान, मन, अन्तर्जगत् और बहिर्जगत्‌में एक जनार्दन ही हैं।'

इस प्रकार श्री एकनाथ महाराजने जिस ईश्वर-भक्तिका उपदेश दिया, उससे भिन्न-भिन्न देवताओंकी उपासना करनेवाले संगठित होकर एक ही भक्तिमार्गके अनुयायी बन गये। आपके समयकी यही सबसे बड़ी विशेषता थी।

सन्त एकनाथजीने अपने जीवनमें दो बड़े काम किये : एक तो 'ज्ञानेश्वरी'के रचयिता ज्ञानेश्वर महाराजकी समाधिका जीर्णोद्धार कराया और दूसरा, ज्ञानेश्वरीका अत्यन्त शुद्ध पाठ तैयार किया, जिससे पाठकोंको उसका तत्त्व समझनेमें सरलता हो गयी।

एकनाथ महाराजने जीवनभर अपने सदुपदेशोंसे असंख्य लोगोंका उद्धार किया है। निःस्पृहता, साधुता, भगवत्ता, प्राणिसेवा, त्याग तथा सद्गृहस्थाश्रमका दिव्य आदर्श सबके सन्मुख रखा है।

अन्तमें एकनाथ महाराजने संवत् १६५६ वि० में गोदावरी-तटपर अपना शरीर छोड़ दिया। उस समय वे बिल्कुल स्वस्थ थे और सबको उपदेशामृत पान करा रहे थे। उन्होंने अपने प्रयाणका समय पहलेसे ही सबको विदित करा दिया था। इस कारण पैठण सर्वत्र सभी लोग भगवद्भजन, कीर्तन, गीतापाठ एवम् नामस्मरण करने लगे थे। दूर-दूरसे लोग, सन्तके अन्तिम दर्शनोंके निमित्त आकर एकत्र हो गये थे। लोगोंके जमावने एक बृहत् मेलेका रूप ले लिया था। हरिकीर्तन और भगवान्‌की जय-जयकारसे आकाश गूँज उठता था। आखिर वही चैत्र कृष्ण षष्ठी तिथिका प्रातःकाल आया, जो सन्त एकनाथ महाराजने अपने अन्तिम प्रयाणका काल बताया था। उस समय महाराजने गोदावरीमें स्नान किया और बाहर निकल सब भक्तोंकी हरि-ध्वनिके बीच सर्वदाके लिए समाधि ले ली।

●

भगवान् महावीर और उनका जैनधर्म

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट

★

चैत्र शुक्ला १३ को जैनधर्मके अन्तिम तीर्थंकर महावीरजीकी जयन्ती मनायी जाती है। विश्वके सभी धर्मोंपर 'धर्म क्या कहता है?' शीर्षकसे १२ भाग लिखनेवाले भट्टजीकी सिद्ध लेखनीसे लिखा प्रस्तुत लेख जैनधर्मके परिचयमें गागरमें सागर सिद्ध होगा।

भगवान् महावीर

'सब प्राणियोंमें मेरी मैत्री है!'—यह था भगवान् महावीरका आदर्श।

अहिंसाके मूर्तिमान् प्रतीक थे वे।

त्याग और तपस्यासे ओत-प्रोत था उनका जीवन।

परिग्रह एक लँगोटी तकका नहीं।

उनका जीवन, उनकी वाणी, उनके विचार युग-युगतक जनताका कल्याण करते रहेंगे।

हिंसा, पशुबलि जाति-पाँतिके भेदभाव जिस युगमें बढ़ गये, उसी युगमें पैदा हुए महावीर और बुद्ध। दोनोंने इन चीजोंके खिलाफ आवाज उठायी। दोनोंने अहिंसाका भरपूर विकास किया।

जन्म : कोई ढाई हजार साल पुरानी बात है। ईसासे ५९९ वर्ष पहले वैशाली गणतन्त्रके क्षत्रियकुण्डग्राममें चैत्र शुक्ल तेरसको वर्धमानका जन्म हुआ। वैशाली है बिहारके मुजफ्फरपुर जिलेका आजका बसाठ गाँव।

वर्धमानके पिताका नाम था सिद्धार्थ। यों लोग उन्हें 'सज्जंस'—श्रेयांस भी कहते थे और जसस—यशस्वी भी। वे ज्ञातृवंशके थे। गोत्र था कश्यप।

वर्धमानकी माँका नाम था त्रिशला। गोत्र था वसिष्ठ।

वर्धमानके बड़े भाईका नाम था नन्दिवर्धन। बहनका सुदर्शना। माँ-बापकी तीसरी और अन्तिम सन्तान थे वर्धमान।

जन्म होनेके बाद माता-पिताने बालकका नाम रखा वर्धमान।

बचपन : वर्धमानका बचपन राजमहलमें बीता। वे बड़े निर्भीक थे।

आठ बरसके हुए, तो उन्हें पढ़ाने, शिक्षा देने, धनुष आदि चलाना सिखानेके लिए शिल्पशालामें भेजा गया। एकबार गाँवके बाहर खेलते-खेलते एक साँप दिखायी दिया। दूसरे सब साथी डरकर भाग गये, किन्तु वर्धमान निश्चल भावसे खड़े रहे। साँप अपने रास्ते चला गया। उनके साहस, धैर्य और पराक्रमकी ऐसी ही अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

विवाह : श्वेताम्बर-सम्प्रदायकी मान्यता है कि युवावस्थामें माता-पिताके कहनेसे वर्धमानने विवाह कर लिया था। उनकी पत्नीका नाम था यशोदा। एक बेटी भी उन्हें हुई थी, जिसका नाम था अयोज्जा—अनवद्या। राजपुत्र जमालीसे उस बेटीका विवाह हुआ था।

दिगम्बर-सम्प्रदायकी मान्यता है कि वर्धमानका विवाह हुआ ही नहीं था। वे बाल-ब्रह्मचारी थे।

वैराग्य : राजकुमार वर्धमानके माता-पिता पार्श्वनाथके अनुयायी थे। पार्श्वनाथ जैन-धर्मके २३वें तीर्थंकर थे और महावीरसे २५० वर्ष पूर्व हुए थे। पार्श्वनाथकी श्रमण-परम्परामें अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रहरूप चातुर्याम धर्मका पालन होता था। वर्धमान महावीरने इस चातुर्याम धर्ममें ब्रह्मचर्य जोड़कर पञ्च महाव्रतरूपी धर्म चलाया। वर्धमान सबसे प्रेमका व्यवहार करते थे। वे इस बातका पूरा ध्यान रखते थे कि उनके किसी कामसे किसीको कष्ट न पहुँचे। उन्हें इस बातका अनुभव हो गया कि इन्द्रियोंका सुख, विषय-वासनाओंका सुख दूसरोंको सुख पहुँचा करके ही पाया जा सकता है।

वर्धमानमें वैराग्यकी यह भावना दिन-दिन बढ़ती गयी।

तपस्या : २८ वर्षकी अवस्थामें उनके माता-पिताका देहान्त हो गया। ज्येष्ठबन्धु नन्दिवर्धनके अनुरोधपर वे दो बरसतक घरपर रहे। बादमें तीस बरसकी भरी जवानीमें वर्धमानने श्रामणी दीक्षा ली। वे 'समण' बन गये। उनके शरीरपर परिग्रहके नामपर एक लंगोटी भी नहीं रही।

वे ऐसी जगह रहते, जहाँ कोई विरोध न करे। अधिकतर वे ध्यानमें ही मग्न रहते। मौन रहते। हाथमें ही भोजन कर लेते। गृहस्थोंसे कोई चीज माँगते नहीं।

धीरे-धीरे उन्होंने आत्म-साधनामें अच्छी प्रगति प्राप्त कर ली। वर्धमान महावीरने १२ सालतक मौन तपस्याकी और तरह-तरहके कष्ट झेले। अन्तमें उन्हें 'केवल ज्ञान' प्राप्त हुआ।

उपदेश : केवल ज्ञान प्राप्त होनेके बाद भगवान् महावीरने जनताके कल्याणके लिए उपदेश देना शुरू किया। अर्धमागधी भाषामें वे उपदेश करने लगे, ताकि जनता उसे भली-भाँति समझ सके। तीस बरसतक उनकी धर्म-देशना होती रही।

भगवान् महावीरने अपने प्रवचनोंमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहपर सबसे अधिक जोर दिया। त्याग और संयम, प्रेम और करुणा, शील और सदाचार ही उनके प्रवचनोंका सार था।

संघकी स्थापना : भगवान् महावीरने श्रमण और श्रमणी, श्रावक और श्राविका सबको लेकर चतुर्विध संघकी स्थापनाकी। कहा : जो जिस अधिकारका हो, वह उसी वर्गमें आकर सम्यक्त्व पानेके लिए आगे बढ़े। जीवनका लक्ष्य है समता पाना।

निर्वाण : धीरे-धीरे संघ उन्नति प्राप्त करने लगा। देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें घूमकर भगवान् महावीरने अपना पवित्र सन्देश फैलाया।

तीस वर्षतक उपदेश करनेके बाद भगवान् महावीरने ७२ वर्षकी अवस्थामें ईसा-पूर्व ५२७में अपापा पुरीमें कार्तिक (आश्विन) कृष्ण अमावास्याको निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान् महावीरके निर्वाण-दिवसपर घर-घर दीपक जलाकर दीपावली मनायी जाती है।

हमारा जीवन धन्य हो जाय, यदि हम भगवान् महावीरके इस छोटे-से उपदेशका ही सच्चे मनसे पालन करने लगें कि संसारके सभी छोटे-बड़े जीव हमारी ही तरह हैं, हमारी आत्माके ही स्वरूप हैं :

डहरे य पाणे य पाणे। ते आत्तओ पासइ सव्वलोए॥

जैनधर्म और दर्शन

जैन-धर्म है 'जिन' भगवान्का धर्म। 'जिन' शब्द बना है 'जि' धातुसे। 'जि' माने जीतना। 'जिन' माने जीतनेवाला। जिन्होंने अपने मनको जीत लिया, अपनी वाणीको जीत लिया और अपनी कायाको जीत लिया, वे हैं 'जिन'।

तीर्थङ्कर : ऐसे 'जिनों' ने, तरन-तारन महात्माओंने असंख्य जीवोंको इस संसारसे तार दिया। किनारे लगा दिया। 'तीर्थ' कहते हैं घाटको, किनारेको। धर्म-तीर्थके प्रवर्तन करनेवाले 'तीर्थङ्कर' कहे जाते हैं। जैनधर्मके अनुसार २४ तीर्थङ्कर हो गये हैं, जिनमें आदिनाथ 'ऋषभनाथ' प्रथम तो अन्तिम तीर्थङ्कर हैं, वर्धमान महावीर।

आम्नायः जैनधर्म माननेवालोंके मुख्यरूपसे दो आम्नाय (सम्प्रदाय) हैं : १. दिगम्बर और २. श्वेताम्बर। दिगम्बर-सम्प्रदायके मुनि वस्त्र नहीं पहनते। श्वेताम्बर-सम्प्रदायके मुनि सफेद वस्त्र धारण करते हैं। कोई ३०० साल पहले श्वेताम्बरोंमें-से ही एक शाखा और निकली 'स्थानकवासी।' ये लोग मूर्तियोंको नहीं पूजते। जैनियोंकी तेरहपन्थी, बीसपन्थी, तारणपन्थी, यापनीय आदि कुछ और भी उपशाखाएँ हैं। इन सबमें आचार, पूजा-पद्धति आदिको लेकर थोड़ा-बहुत भेद है, पर भगवान् महावीरमें, अहिंसा, संयम और अनेकान्तवादमें सबका समान विश्वास है।

जैनश्रुत और आचार्य : भगवान् महावीरने उपदेश ही दिया। उन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं रचा। बादमें उनके गणधरोंने—प्रमुख शिष्योंने—उनके उपदेशों और वचनोंका संग्रह कर लिया। इनका मूल साहित्य प्राकृतमें है, विशेष रूपसे मागधीमें। जैन-शासनके सबसे पुराने आगम-ग्रन्थ ४६ माने जाते हैं। उपाङ्ग ग्रन्थ १२ हैं। प्रकीर्ण ग्रन्थ १९ हैं। छेद-ग्रन्थ ३ हैं। मूलसूत्र ४ हैं स्वतन्त्र २ ग्रन्थ हैं। श्वेताम्बर इन ग्रन्थोंको मानते हैं, दिगम्बर नहीं। उनका कहना है कि सारा प्राचीन साहित्य लुप्त हो गया। पुराणोंमें ४ मुख्य हैं : आदिपुराण, हरिवंश, पद्मपुराण और उत्तर पुराण। जैन-परम्परामें ६३ शलाका-महापुरुष माने गये हैं। पुराणोंमें इनकी कथाएँ तथा धर्मका वर्णन आदि है। प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओंमें भी ये पुराण उपलब्ध हैं।

दिगम्बर-सम्प्रदायमें षट्खण्डागम, तत्त्वार्थसूत्र, राजवार्तिक आदि अनेक सिद्धान्त ग्रन्थ है।

कुन्दकुन्द, उमास्वाती, समन्तभद्र आदि अनेक आचार्योंने अनेक धर्मग्रन्थ लिखे हैं। लगभग दो हजार वर्षकी आचार्य-परम्परामें जैन आचार्योंने विपुल साहित्यका निर्माण किया

है। जैनाचार्योंने अनेक विषयोंपर ग्रन्थ-रचना की है। ज्योतिष, छन्द, अलङ्कार, काव्य, आयुर्वेद, व्याकरण, दर्शन, आचार, चरित्र, नीति, गणित आदि ऐसा कोई विषय नहीं छूटा, जिसपर जैन-आचार्योंने ग्रन्थ-रचना न की हो।

जैनदर्शन : जैनधर्ममें संसारको, जगत्को अनादि-अनन्त माना जाता है। जैनी मानते हैं कि इस जगत्को बनानेवाला कोई नहीं है। जैनदर्शनके अनुसार यह जगत् जीव और अजीव, इन दो द्रव्योंके मेलका नाम है। अजीव द्रव्यके पाँच भेद हैं : पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इस प्रकार ६ द्रव्योंसे यह संसार चलता है। इन द्रव्योंमें कभी घटती-बढ़ती नहीं होती। सिद्धान्तग्रन्थोंमें इन ६ द्रव्योंका विस्तारसे वर्णन किया गया है। इनमें धर्म और अधर्म नामक जो द्रव्य हैं, वे कर्तव्य-अकर्तव्यके अर्थमें नहीं हैं। इन ६ द्रव्योंके पर्यायोंमें हेरफेर होता रहता है। जैनधर्म कहता है कि ईश्वर नामकी ऐसी कोई शक्ति नहीं जो सृष्टिका संचालन, संहार कर सके।

जैनधर्मके मूल : जैनधर्मके विचारोंका मूल है, अनेकान्त या स्याद्वाद और उनके आचारका मूल है, अहिंसा। अनेकान्तमें समस्त दार्शनिक विरोधोंका समन्वय हो जाता है। जैनधर्ममें अहिंसाको सबसे ऊँचा स्थान है। उसकी अत्यन्त सूक्ष्म व्याख्या और विवेचना की गयी है। तपस्याका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। तपस्यामें जैनमुनियोंकी तुलना और किसीसे करना कठिन है। मुनियोंका तप १२ प्रकारका है। गृहस्थोंके धर्म—५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत भी दूसरे शब्दोंमें शरीर और वाणीकी तपस्या ही है। तपस्याकी मूल भित्ति है सदाचार। ५ महाव्रत, ५ समिति और ३ गुप्तिरूप तेरह प्रकारका मुनि-चारित्र्य बताया गया है। मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ ये चार भावनाएँ और सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्र्य ये तीन रत्नमय माने गये हैं। इन रत्नत्रयोंकी बड़ी महिमा है। तीनों मिलकर ही मोक्षमार्ग कहलाते हैं। जैनधर्ममें ७ तत्त्व माने गये हैं : जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। कुछ लोग पाप और पुण्यको लेकर ९ पदार्थ (तत्त्व) मानते हैं।

कर्म-सिद्धान्त : जैनधर्ममें कर्म-सिद्धान्तपर बहुत जोर दिया गया है। मूल कर्म आठ हैं : उत्तर-प्रकृतियाँ अनेक हैं। कर्म वह है, जो आत्माका असली स्वभाव प्रकट न होने दे। उसे ढँक दे। कर्मका जैनसिद्धान्तमें वह अर्थ नहीं, जिसे कर्तव्य-कर्म कहा जाता है। कर्म-नामके 'परमाणु' होते हैं। मनुष्यकी प्रवृत्ति और परिणामके अनुसार ये आत्मासे चिपट जाते और सुख-दुःख देते हैं।

इस कर्मबन्धनसे छुटकारा पानेके लिए एक ही उपाय है और वह यह कि राग-द्वेषसे अतीत बनो। तपस्या, अस्तेय और अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और सदाचारसे ही आत्माको जीता जा सकता है। विषमता दूरकर समता प्राप्त की जा सकती है। तभी शान्ति मिलेगी और शान्ति ही तो है निर्वाण !

●

कहानी

मिट्टीका मोह

श्री गोपालजी मिश्र

★

उसकी चाल-ढालमें सम्राट्की गरिमा है तो उन्मुक्त अट्टहासमें संसारभरकी बेफिक्री। बातचीतमें दार्शनिकताकी दुरूहता है तो आँखोंमें भरी है सम्मोहिनी शक्ति।

उसके पास पहुँचते ही विचित्र शान्तिकी अनुभूति होती है। उसे देखनेपर शरीरभर प्रसन्नता लहर उठती है। वह अनिन्द्य-सुन्दर है। उसके साथ बातचीतके परमानन्दकी वह दिव्य अनुभूति ! जी चाहता है, उसीमें आकण्ठ डूबे रहें। मेरा उससे परिचय अभी कुछ ही वर्षोंका है, पर लगता है, मानो दोनोंका जनम-जनमका साथ हो।

ग्रैंड ट्रंक रोडपर, जहाँ वह गंगाका किनारा छूकर मुड़ जाती है, एक विशाल अश्वत्थ (पीपल) के वृक्षके नीचे वह बैठा रहता। सड़कपर दिन-रात कारें, टैक्सियाँ, स्कूटर, गुजरा करते हैं, लेकिन वहाँसे कोई उसे देख नहीं पाता। उसका स्थान कुछ नीचे उतरकर है। अलबत्ता ट्रेन जब पुल पारकर आगे बढ़ती है, तो वह दूरपर दीख जाता है।

उसने हँसकर बताया था : 'काफी सोच-विचारके पश्चात् मैंने यह स्थान चुना। यह रोड यहाँ गंगाको छूनेसे बाल-बाल बचकर मुड़ जाती है। ठीक ऐसे ही मैं भी ईश्वरके निकट पहुँचकर भी हट जाता हूँ चाहूँ तो पहुंच सकता हूँ, उसके प्यारमें डूब सकता हूँ।

'देखो न ! अगर यह रोड अपनी जड़ता नहीं छोड़ती तो जिस दिन माँका प्यार ऊफानपर आ जायगा, उसमें बाढ़ आ जायगी, वह स्वयं आकर अपने प्रेममें इसे डुबो लेगी। मैं भी इस जड़ शरीरमें हूँ। जिस दिन परमात्माका अपने अंश जीवात्माके लिए स्नेह ऊफान खायेगा, दोनों एक हो जायेंगे।

'वृक्षकी यह छाया मुझे याद दिलाती रहती है कि छायामें कितना सुख है। जब एक वृक्षकी छायामें इतना सुख है, तो उस परमपिता परमात्माके वरद हस्तके नीचे कितना असीम सुख होगा !'

'सारी बातें मानी जा सकती हैं, पर एक बात मानना कठिन है। वह है उदर-गह्वरके प्रदीप्त अग्निको झुठला देना। मनुष्य सब कुछ छोड़ सकता है, पर पेटकी आग तो शान्त करनी

ही पड़ेगी। हाँ, यह अलग बात है कि वह योगी हो और महीनों, वर्षोंतक समाधि लगानेकी क्षमता रखता हो। जब आप कुछ करते नहीं तो आपके भोजनकी समस्या……?'—मैंने हिचकते हुए पूछा।

उसे मेरे बचकाने सवालपर वेसाख्ता हँसी आयी। बोला : 'तुम तो विद्वान् हो…… बहुत-कुछ पढ़ा भी होगा। क्या सन्त मलूकको नहीं पढ़ा ?'

बात सच थी। और यह भी सच है कि वर्तमान युगमें इतने आयाम, इतनी विधाएँ, इतने ग्रन्थ और देशी-विदेशी साहित्यका इतना बड़ा अम्बार है कि किसीके भी लिए लगातार कई जन्मोंमें भी सब कुछ जान-पढ़ लेना असम्भव है।

हृदयकी बात चेहरेसे पढ़ ली गयी। उसने बताया : **अजगर करै न चाकरी**……।

आगे मैंने उसे न बोलने दिया और कहा : 'मुझे याद है।'

मेरी बातने उसे गम्भीर बना दिया। मैंने सोचा—शायद मेरा बीचमें टोक देना उसे बुरा लगा। हो सकता है, सन्त और सम्राट्में कोई अन्तर नहीं। बल्कि सन्त सम्राट्से भी ऊपर होते हैं—इतिहास यही बताता है।

उसने कहा : 'देखा न! जानते थे, लेकिन तुम्हें लगता था कि तुम नहीं जानते। मेरे तनिकसे संकेतपर याद आ गया। ऐसे ही जीव ब्रह्मको जानता है, पर लगता है वह नहीं जानता। लेकिन किसीका तनिक-सा संकेत मिलते ही वह बोल उठता है—हाँ हाँ, यह तो मैं जानता ही हूँ।'

कहाँकी बात कहाँ पहुँच गयी! बस, ये ही बातें तो मुझे पागल बनाये रहती थीं कि मैं घण्टों उसके पास बैठा रहूँ।

वह इस दुनियासे परे था। उसे ऊपर उठा देख मैं भी ललच उठता था। एकबार तो मैंने उससे साफ कहा : 'मुझे भी संकेत कीजिये न वह ब्रह्मवाली बात…!'

'नहीं, तुम अभी उसके पात्र नहीं।'

उसके स्वरमें वज्रकी-सी दृढ़ता थी और मैं सहज ही आश्वस्त था। लेकिन उसकी आँखोंमें जो चिदानन्दकी करुणा झलक रही थी, वह बिना बोले ही बोल रही थी कि एक दिन वह निश्चय ही दिखा देगा मुझे कल्याणका पथ।

× × ×

इन कुछ वर्षोंमें मैंने साफ देखा कि उसे माननेवालोंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती चली गयी है। पहले उसके पास गाँवोंके अनपढ़-अधनंगे वस्त्रावेष्टित शरीरवाले आते थे। फिर शहरके साइकिल, रिक्शा, स्कूटरवाले आने लगे। जब और भी ख्याति बढ़ी तो कारोंपर तोंदियल श्रीमान् और उनकी घरवालियाँ आने लगीं।

उनकी नजर मैंने सबपर एक जैसी देखी। लोग तरह-तरहके दुखड़े रोते और दुआएँ माँगते। मैंने उसे उन सबसे एक ही बात कहते सुना : 'जा, कल्याण होगा।'

वादमें उसने वताया कि 'ये जागतिक प्रपञ्चवाले भी कैसे मूढ़ हैं कि दुनियाकी चीजें मुझसे माँगने चले आते हैं, जब कि मैं इन्हें छोड़ चुका हूँ। काश, ये सब मेरे पास न आकर ईश्वरकी शरणमें जाते और उन्हींसे हृदयकी बात कहते तो कितना अच्छा होता! मुझे क्या?··· वे दुःखी होते हैं तो मुझसे उनका दुःख नहीं देखा जाता। मैं भी दुःखी हो उठता हूँ और ईश्वरसे उनके कल्याण करनेकी कामना करता हूँ।'

फिर तपस्यामें और निखार आ जानेपर उसने बताया था: 'ईश्वरसे यह कहना कि तू कल्याण कर, ठीक उसी प्रकार हास्यास्पद है जिस प्रकार किसी जजसे यह कहना कि सही-सही न्याय करें। अरे, उसका तो वही काम है, सो तो वह करेगा ही।'

अतः अब जो भी आता, उनकी बातें सुनकर वह अपनी एक उँगली ऊपर आकाशकी ओर उठा देता। जाने क्या चमत्कार था उसमें कि जो एकबार आता, वह कुछ दिनों बाद दूसरी बार आता तो सौगात, उपहार, आदि लेकर आता। शायद उनका काम बन गया होता।

मुझसे वह खुश था, क्योंकि मैंने उससे कभी कुछ न माँगा था। सिर्फ एकबार उसके काफी पूछनेपर मैंने वही बात उसके समक्ष रख दी जो पहले लिखा चुका हूँ। बस, और कुछ नहीं।

× × ×

कुछ दिन मैं बहुत व्यग्र था। मेरी ही तरह कितने और लोग भी व्यग्र थे, क्योंकि अब वह तेजस्वी व्यक्ति वहाँ नहीं था।

इन दिनों बाढ़ आ गयी थी। वह सारा स्थान जलप्लावित हो चुका था। उस विशाल वृक्षकी सिर्फ फुनगीभर दिखाई पड़ रही थी। लोगोंने समझ लिया कि वह व्यक्ति बाढ़में बह गया।

लेकिन महीनों बाद एक दिन मैं उधरसे गुजर रहा था, तो देखा कि पानी कबका वहाँसे सरक चुका है और वह व्यक्ति फिर अपनी जगह उसी शान्त मुद्रामें आसीन है। मेरी खुशीका ठिकाना न रहा।

पूछनेपर उसने हँसकर बताया: 'माँ भागीरथी बढ़ आयीं। मैंने सोचा कि माँ चाह रही हैं कि अपनी गोदमें सुला लें।'

उससे यह भी पता चला कि गंगामें उसने शवासन लगा लिया। धारा उसे बहा ले चली। मीलों बहनेके बाद वह एक किनारे लगा। उसने सोचा कि ईश्वरकी इच्छा है कि वह अभी जिये। वहाँ उसने देखा, एक गाँव जलमग्न था। उसने सोचा कि ईश्वरने उसे यहाँ इन लोगोंकी सेवा करनेके लिए भेजा है।

अथक परिश्रम, सूझ-बूझ और प्रबन्धसे उसने उन लोगोंकी जानें बचा लीं। लोगोंने उसे अपने ही साथ रहनेको विवश किया। लेकिन उसने तो निरासक्त भावसे ईश्वरकी आज्ञाका

पालन किया था। रातमें जब सब सो रहे थे, तो वह चुपकेसे उठकर अपने इसी स्थानपर वापस आ गया।

फिर महीनों कोई ऐसी बात न हुई।

एक दिन बात ही बातमें उसने मुझसे कुछ रुपये माँगे। आश्चर्य तो हुआ, लेकिन अस्वीकारनेका कोई प्रश्न ही नहीं था और न उसने बताया ही कि उन रुपयोंका क्या करेगा।

और वह फिर गायब हो गया।

× × ×

पूरे एक माह बाद वह वापस लौटा। बताया कि विहारमें दुर्भिक्ष पड़ गया था। उसने वहाँ जाकर एक ओर तो सरकारको मददके लिए खटखटाया और दूसरी ओर देशके बड़े-बड़े सेठोंसे धन एकत्र कर उससे अनाज खरीदा और लोगोंमें बाँटता रहा। स्थिति सामान्य होनेपर पुनः वापस आ गया। इस बार भी लोगोंने वहाँ उसे बहुत रोका, लेकिन वह तो 'नेकी कर, दरियामें डाल' का कायल था।

× × ×

तीसरी बार वह फिर लगभग दो महीनेके लिए गायब हो गया।

जरूर कोई ऐसी ही बात रही होगी, मैंने सोचा। मेरा अन्तर्मन कहता था कि वह सिद्ध पुरुष है और उसपर कोई आँच नहीं आ सकती।

लेकिन इसबार जब वह आया, तो उसके बायें हाथकी तीन उँगलियाँ गायब थीं।

उसने बताया—इसबार वह लद्दाख चला गया था। गया तो था वह घायलोंकी सेवा करने, क्योंकि उस समय भारत-चीनयुद्ध चल रहा था। लेकिन परिस्थितियोंने उसे शस्त्र उठानेपर विवश कर दिया।

उसने बताया कि एक छीने गये मशीनगनसे उसने सैकड़ों चीनियोंको मौतके घाट उतारा। वह देख न सका कि चीनी उसके देशकी माँ-बेटियोंकी इज्जत उतारें।

मैंने पूछा : 'जब आपको वैराग्य हो गया है, तो फिर यह सब क्यों?'

ठहाकोंके बीच उसने बताया : 'सारी गीता अर्जुन और कृष्णके बीच इसी बातको लेकर ही तो है।'

मुझे अपने लचर प्रश्नपर ग्लानि हुई।

उसने समझाया कि मनुष्य-जीवनको सफल बनानेके लिए तीन रास्ते हैं—ज्ञान, भक्ति, और कर्म। कर्मका रास्ता जगत्की प्रकृतिसे मेल खाता है, पर शर्त यही है कि कर्म निरासक्त भावसे हो।

'क्या यह सम्भव है?'—मैंने पूछ लिया।

'क्यों नहीं ? क्या योगेश्वर कृष्णा झूठ बोलेंगे ? किन्तु साधनाकी आवश्यकता है।

× × ×

इधर महीनोंसे मैं देख रहा था कि एक अजीब-सा व्यक्ति उसके पास आने लगा है। उसकी मुखमुद्रा इतनी कठोर, वाणी इतनी कर्कश, व्यवहार ऐसा रूखा और चाल-ढाल कुछ इस प्रकारकी थी कि देखनेमात्रसे रोंगटे खड़े हो जाते थे।

लेकिन उस व्यक्तिके दृष्टिकोणमें कोई परिवर्तन न आया। उसकी निगाहमें तो सभी एक-से थे।

उसकी लगन और भक्ति देखकर आखिर उसने एक दिन पूछ ही लिया : 'क्यों भाई ! क्या चाहते हो ?'

उस भयंकर आकृतिवाले व्यक्तिकी बाछें खिल गयीं : 'महाराज ! जो माँगूँगा वह मिलेगा ?'

क्षणभर सोच लेनेके बाद वह बोला : 'क्यों नही, अवश्य ! यदि वह मेरी सामर्थ्यके अन्दर हो।'

मैंने देखा—इस क्षणभरके मौनके दरमियान उसके चेहरेपर इतनी शान्ति आ विराजी कि देखनेमात्रसे व्यक्ति कल्पना कर सका कि हिमालयपर कितनी शान्ति होगी।

'हाँ महाराज ! सामर्थ्यके अन्दर ही है।'

'तो मिलेगा। बोल !'

और जो उसने माँगा, उसे सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। इतना दुस्साहस और इतनी क्रूरता ! इतनी हृदयहीनता ! ओफ !

उस भयंकर दीखनेवाले व्यक्तिने बताया कि वह एक डाकू है (उसने अपना नाम नहीं बताया।) और कि उसे एक राजासाहबके यहाँ डाका डालना है। डाकेमें लाखोंकी सम्पत्ति हाथ लगनेवाली है। लेकिन ? लेकिन ओझाका कहना है कि काली माईको नरबलि चढ़ाओ, किसी महात्मा जैसे नरकी बलि चढ़ाओ, तभी सफल होगे। उसने यह भी बताया कि उसके दलवाले लोग किसी महात्माकी बलि चढ़ानेमें बहुत हिचक रहे हैं। लेकिन माँ कह रही हैं तो करना ही पड़ेगा।

उस समय रात जवानीपर थी। वहाँ हम तीन ही थे। मेरे तो होश फाख्ता हो गये। रोंगटे खड़े हो गये। मैंने एक भयमिश्रित निगाह उसपर डाली। लेकिन वहाँ भय, निराशाका चिह्नतक न था। अजीब-सी बात थी !

'हूँ···ठीक है···मुझे स्वीकार है···माँके लिए भला कौन नहीं बलिदान होना चाहेगा ? चलो, ले चलो। जब माँने ही बुलाया है तो इसमें सोच-विचार क्या ?'

मुझसे उसने कहा : 'देखो, भक्त ! व्यर्थमें पुलिस वगैरहोंके पास मत दौड़ना। यह मेरी आज्ञा है।'

मेरे मनने उसकी आज्ञा नहीं मानी, पर जिह्वाने हामी भर दी।

उसी रात्रिके बाद तीन दिनोंतक वह नहीं दिखाई पड़ा। मैं नित्य, दिनमें कई बार जाकर देख आता था। हर बार निराशा और झल्लाहट! कोई मेरे अन्दरसे पूछता—किस आशासे तुम उधर बार-बार जा रहे हो? अरे, अबतक तो उसकी बलि चढ़ गयी होगी।

लेकिन चौथे दिन मैंने जो कुछ देखा, उसपर मुझे विश्वास नहीं हो रहा था!

देखा, एकबार फिर उस विशाल वृक्षके नीचेका चबूतरा आबाद है। अब वहाँ केवल एक व्यक्ति नहीं, उस एकके साथ बीस और व्यक्ति हैं। बीसों साधुके वेषमें थे।

मेरा कौतूहल बहुत बढ़ चुका था। उत्कण्ठित चित्तसे मैंने पूछ ही लिया: 'अरे! आप?...'

उसने शान्तभावसे उत्तर दिया: 'प्रभुके खेल न्यारे हैं। जितना ही कोई समझनेका प्रयत्न करता है, पहेली अबूझ ही बनती चली जाती है।'

'मगर ये सब?'—मैंने उन बीसोंकी ओर संकेत करते हुए पूछा।

'ये सब डाकू थे, अब साधु हैं। कर्म ही व्यक्तिको अच्छा-बुरा बनाता है। पहले ये बुरे थे, अब अच्छे हैं। पहले उनका सिर झुका रहता था, अब दूसरोंका इनके आगे झुका रहेगा।'

'लेकिन आप जीवित कैसे बचे?'

'ईश्वरकी इच्छा।' बस, इतना ही कहकर वह चुप हो गया।

मेरी जिज्ञासा बहुत बढ़ गयी थी। मैंने अपना प्रश्न दोहरा दिया।

अबकी बार उन बीसोंका सरदार बोला: 'महाराजजीकी बलिकी तैयारी पूरी हो चुकी थी। नियमानुसार बलि चढ़ानेके पूर्व इनसे पूछा गया कि अपनी अन्तिम इच्छा बताओ।'

सरदार सांस लेनेके लिए रुका। उसने अपने घुटे-घुटाये सिर और चेहरेपर हथेली रगड़कर कहना शुरू किया: 'महाराजजीने कहा कि मुझे बलि चढ़ानेके पूर्व तुम्हें एक वादा करना पड़ेगा।'

वादेकी बातपर पूरा गिरोह चिढ़ गया। इतने नामी डाकुओंसे वादा!

लेकिन ओझाने कहा: 'इस समय यह व्यक्ति जो कहेगा, वह माँकी ही आज्ञा होगी। वादा करना ही होगा सरदार, नहीं तो बलि व्यर्थ जायगी।'

ओझाकी बात सरदार टाल न सका। बोला: 'कहिये महाराज, मैं और मेरा दल वादा करता है। हम बातके धनी हैं, प्राण देकर भी प्रण पूरा करते हैं।'

उस समय महाराजजीने कहा कि 'आजतक तुमने दौलतसे प्रेम किया है। आजसे तुम्हें वादा करना होगा कि अब तुम लोग दौलतका प्रेम छोड़कर इन्सानसे प्रेम करना प्रारम्भ कर दोगे।'

सभीके मुँह खुलेके खुले रह गये—किंकर्तव्यविमूढ, हक्के-बक्के-से।

ओझाने मौन तोड़ा: 'सरदार! माँ की आज्ञा माननी ही पड़ेगी।'

'मगर हम खायेंगे क्या ?'—सरदार झल्लाकर चीख पड़ा।

'पूछो इससे।'—उसके साथी चिल्ला पड़े।

महाराजजीने कहा : 'बच्चा न माँगे तो भी माँ स्वयं ही बच्चेको खाना खिलाती ही है। गीतामें भी भगवान् श्रीकृष्णने **योगक्षेमं वहाम्यहम्** का अभयदान दे रखा है। फिर चिन्ता किस बातकी ?'

लगभग आध घंटेतक दल इसपर विचार करता रहा और अन्तमें निर्णय किया गया कि पूरे दलके भोजनका भार महाराजजीको लेना होगा।

और उसीके बाद महाराजजीके साथ पूरा दल है और जैसे वे कहते हैं, सब करते हैं।

मैंने उस व्यक्तिकी ओर देखा, जिसे ये लोग महाराजजी कहकर सम्बुद्ध कर रहे थे। मुझे लगा जैसे कि वह महात्मा बुद्ध हों, दधीचि हों, शिवि हों, हरिश्चन्द्र हों।

'भोजनकी समस्या तो जटिल होगी।'—मेरे मुँहसे निकल गया।

'भोजनसे शरीरका पोषण होता है। आत्मा शरीरसे परे है। शरीर तो जड़ है, मिट्टी है। मिट्टीसे इतना मोह क्यों ? मिट्टीसे कर्म कराना चाहिए—अनासक्त भावसे। फिर तो जिसने इसे बनाया है, वह योगक्षेमका वहन करेगा ही।'

शायद मेरे अन्दर अब भी कुछ हिचक थी जो उसने भाँप ली, बोला :

'अद्भुत बात है, ईश्वरपर भरोसा नहीं हो पाता। वह तो हरक्षण लोगोंकी आँखें खोलता रहता है, लेकिन लोग हैं कि मिट्टीका मोह छोड़ नहीं पाते।'

उसका ठहाका गूँज उठा और गूँज उठा उसीके साथ उन बीस नव-परिवर्तित साधुओंका ठहाका !

मुझे लगा, मिट्टीका ढूह ढहता जा रहा है। अब मिट्टीका मोह समाप्त होकर ही रहेगा।

●

द्वैत मिथ्या और अद्वैत सत्य

जब जीव अपने अद्वितीय आत्मस्वरूपको भूल कर नाना वस्तुओंका दर्शन करने लगता है तब वह स्वप्नके समान झूठे दृश्योंमें फँस जाता है अथवा मृत्युके समान अज्ञानमें लीन हो जाता है। जब द्वैत नामक कोई वस्तु ही नहीं है, तब उसमें अमुक वस्तु भली है और अमुक बुरी, अथवा इतनी भली और इतनी बुरी यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता।

श्रीकृष्णवचन (भागवत)

आदि कविकी प्रकृति-माधुरी : एक दृष्टि

श्री जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल,

★

आदि कवि वाल्मीकिने 'रामायण'में बाह्य प्रकृतिके मनोरम दृश्य चित्र प्रस्तुत किये हैं। इनमें एक ओर मानवकी अन्तःप्रकृतिका सूक्ष्म चित्रण है तो दूसरी ओर बाह्य प्रकृतिका भी विशद एवं सजीव चित्रण है। इससे स्पष्ट है कि वाल्मीकिका हृदय प्रकृतिके प्रति अत्यन्त संवेदनशील था। उन्होंने अहंकारके लिए प्रकृतिके दृश्योंका विधान न करके कोमल अनुभूतियोंके प्रतिपालन एवं मानवके प्रकृतिके साथ सहज सम्बन्धकी अभिव्यक्तिके लिए किया है। हेमन्त ऋतुका यह वर्णन देखिये :

शरद्व्यपाये हेमन्त ऋतुरिष्टः प्रवर्तते।

शरद् ऋतुके समाप्त होनेपर अच्छी लगनेवाली हेमन्त ऋतु उपस्थित हुई है। इस शुभ ऋतुसे सम्वत्सर अलंकृत-सा प्रतीत होता है :

अलंकृत इवाभाति येन संम्वत्सरः शुभः।

इस ऋतुमें शीतका प्रकोप है, पृथ्वी अन्नसे भरी हुई है। जल सेवन योग्य नहीं रह गया है और अग्नि अच्छी लग रही है—

नीहारपरुषो लोकः पृथिवी शस्यमालिनी।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः॥

और इस सुन्दर हेमन्त ऋतुमें 'विजिगी नृपषु' विजय-यात्रार्थं विचरण कर रहे हैं—

विचरन्ति महीपाला यात्रार्थं विजिगीषवः।

सूर्य उत्तरायणसे दक्षिणायन हो गये हैं। कवि कल्पना करता है कि सूर्यके मनोयोगसे दक्षिण दिशाका उपभोग करनेसे उत्तर दिशा तिलकसे हीन स्त्रीकी भाँति शोभित नहीं हो रही है—

सेवमाने दृढं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम्।
विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक्प्रकाशते॥

और हिमालयका तुषारावृत होनेके कारण 'हिमालय' नाम सार्थक हो गया है :

यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान् हिमवान् गिरिः।

हेमन्त ऋतुके दिन 'अत्यन्त सुखसंचार' हैं, मध्याह्नमें धूपका स्पर्श सुखदायक है, छाया और जल बुरे लग रहे हैं :

अत्यन्त सुखसंचारा मध्याह्ने स्पर्शतः सुखाः।
दिवसाः सुभगादित्याः छायाः सलिलदुर्भगाः।

ग्राम्य प्रकृतिकी ओर भी महाकविका ध्यान आकर्षित हुआ है। हेमन्त ऋतुमें कुहरेसे ढके हुए अरण्योंमें जो गेहूँ और जौके खेत हैं, सूर्यके उदित होनेपर बोलते हुए क्रौञ्च और सारस पक्षियोंसे शोभित हो रहे हैं :

बाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च।
शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नदद्भिः क्रौञ्चसारसैः।

खजूरके पुष्पकी-सी आकृतिवाले तथा दानोंसे भरी हुई बालोंवाले सुनहले धान कुछ झुके हुए शोभित हो रहे हैं :

खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः।
शोभन्ते किञ्चिदालम्बाः शालयः कनकप्रभाः॥

महाकविके प्रकृति-वर्णनकी सबसे बड़ी विशेषता सहज भाव है। हेमन्त ऋतुका सूर्य 'शशाङ्क इव लक्ष्यते'में यह सहज भाव पूर्णतया मुखरित है—

मयूखैरुपसर्पद्भिः हिमनीहारसंवृतैः।
दूरमभ्युदितः सूर्यः शशाङ्क इव लक्ष्यते।

इसके उपरांत वसन्तके वर्णनमें पंपाका सौन्दर्य वर्णन अनुपम है—

सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका।
फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः।

वसन्तकी शोभा निराली है। वृक्षोंके शिखर चारों ओर पुष्पोंके भारसे लदे हैं और उनपर हर तरफसे फूली हुई लताएँ चढ़ी हुई हैं—

पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समन्ततः।
लताभिः पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि सर्वतः।

वसन्तका सुखदायक पवन अत्यन्त कामोद्दीपक है। सुगन्धसे भरा हुआ यह चैत्रका मास है जिसमें वृक्षोंमें पुष्प और फल लग गये हैं—

सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः।
गन्धवान् सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमः॥

पुष्पशाली वनोंका रूप देखने लायक है, जैसे बादल पानी बरसाते हैं वैसे ही ये पुष्प-वर्षा कर रहे हैं—

पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम्।
सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षं तोयमुचामिव॥

कविकी भावुकता एवं सौन्दर्य-दृष्टिका उन्मीलन देखिये—

सुपुष्पितांस्तु पश्यैतान् कर्णिकारान् समन्ततः।
हाटकप्रतिसंछन्नान् नरान् पीताम्बरानिव॥

पुष्पोंसे लदे हुए इन कर्णिकार (कनेर) के वृक्षोंको देखो। ऐसा लगता है मानो पीतवस्त्र धारण किए एवं स्वर्णभूषणोंसे युक्त मनुष्य हों।

वर्षाका वर्णन भी रामायणमें अत्यन्त स्वाभाविक एवं कलात्मक है। सूर्यकी किरणों द्वारा समुद्रके जलको पीकर आकाशने नौ महीनोंतक गर्भ धारण किया और अब रसायन प्रसव कर रहा है—

नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्॥

बिजलियोंकी पताका धारण करनेवाले और बगुलोंकी माला पहननेवाले तथा पर्वतके शिखरके समान आकृतिवाले मेघ घोर नाद करते हुए युद्धस्थलमें स्थिर मत्त हाथियोंकी तरह गर्जना कर रहे हैं—

विद्युत्पताकाः सबलाकमालाः शैलेन्द्रकूटाकृतिसन्निकाशाः।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादा मत्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्थाः॥

आकाश मेघाछन्न है न तारे और न सूर्य ही दृश्य हैं, नवीन जलराशिसे पृथ्वी तृप्त हो गयी है और अन्धकारसे पूर्ण दिशाएँ प्रकाशित नहीं हो रही हैं—

घनोपगूढं गगनं न तारा न भास्करो दर्शनमभ्युपैति।
नवैर्जलौघैर्धरणी वितृप्ता तमोविलिप्ता न दिशः प्रकाशाः॥

वर्षाके बाद शरद्‌का वर्णन अत्यन्त मनोहारी है। आकाश स्वच्छ हो गया है, चन्द्रमाके मण्डलको विमल देखकर तथा चाँदनीसे अनुलिप्त शरद् ऋतुकी रात्रिको देखकर किसका मन मोहित न होगा—

पाण्डुरं गगनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्रमण्डलम्।
शारदीं रजनीं चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम्॥

सुन्दर और बड़े-बड़े पंखों वाले, कामदेवके प्रिय (उद्दीपक) कमलके परागसे सने हुए और बड़ी-बड़ी सरिताओंके तटोंपर आये हुए चक्रवाकोंके साथ हंस क्रीडामग्न हैं—

अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः स्मरप्रियैः पद्मरजोऽवकीर्णैः।
महानदीनां पुलिनोपयातैः क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः॥

मेघविहीन नभका वर्णन करते हुए महाकवि कहता है—

लोकं सुवृष्ट्या परितोषयित्वा नदीस्तटाकानि च पूरयित्वा।
निष्पन्नसस्यां वसुधां च कृत्वा त्यक्त्वा नभस्तोयधराः प्रनष्टाः॥

अर्थात् संसारको सुवृष्टिसे परितुष्ट करके, नदी और और तालावोंको भरकर तथा पृथ्वीको अन्नसे पूर्णकर मेघ आकाशको छोड़कर हट गये हैं। शरत्कालमें नदियाँ धीरे-धीरे अपने पुलिनोंको उसी प्रकार प्रकट कर रही हैं जैसे नवसमागमसे लज्जित हुई रमणियाँ अपने जघन-प्रदेशको शनै शनैः अनावृत करती हैं—

दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः।
नवसंगमसव्रीडा जघनानीव योषितः॥

●

नीतिवचनामृत

(मित्रका महत्त्व)

१.

मित्रद्रोहो न कर्तव्यः पुरुषेण विशेषतः।
मित्रध्रुङ् नरकं घोरमनन्तं प्रतिपद्यते॥

द्रोह करिय जनि मित्र सों, नर सयत्न सब ओर।
मित्रद्रोहरत परत है, अमिट नरकमँह घोर॥

२.

कृतज्ञेन सदा भाव्यं मित्रकामेन चैव हि।
मित्राच्च लभते सर्वं मित्रात् पूजां लभेत च॥

नर कृतज्ञ होइय सदा करिय मित्रकी चाह।
सब कुछ पावत मित्रसों पूजा सहित उछाह॥

३.

मित्राद् भोगांश्च भुञ्जीत मित्रेणापत्सु मुच्यते।
सत्कारैरुत्तमैर्मित्रं पूजयेत विचक्षणः॥

मिलत भोग बहु मित्रसों विपदा हू ते त्रान।
उत्तम आदरसों सखा पूजिय सदा सुजान॥

४.

परित्याज्यो बुधैः पापः कृतघ्नो निरपत्रपः।
मित्रद्रोही कुलाङ्गारः पापकर्मा नराधमः॥

मित्रद्रोह-रत अधम नर कुलदाहक कृतपाप।
लाज-रहित उपकृति-हनन ताहि तजिय बुध आप॥

सूक्ति-सुधा

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराजलक्ष्मीं
धर्मिष्ठमार्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

त्यागना कठिन जिसका है, सुर-इन्द्र पाना—
चाहते थे जिस राज-सम्पदा अनिन्द को,
त्याग उसे तातका वचन मान, धर्म रत—,
वन में गये, जो है अभीष्ट मुनिवृन्द को।
प्रेयसी विदेहजाके अभिमत मायामृग—
के जो भगे पीछे लिये धनु-शर-वृन्द को,
पुरुष महान् रघुनायक! तुम्हारे उसी
करता प्रणाम से चरण-अरविन्द को॥

श्रीकृष्ण जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधरशर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस, डुण्ढिराज, वाराणसी—१ में मुद्रित एवं प्रकाशित